सयोग केवली जिन

Presentation Developed By: Smt Sarika Vikas Chhabra

मंगलाचरण

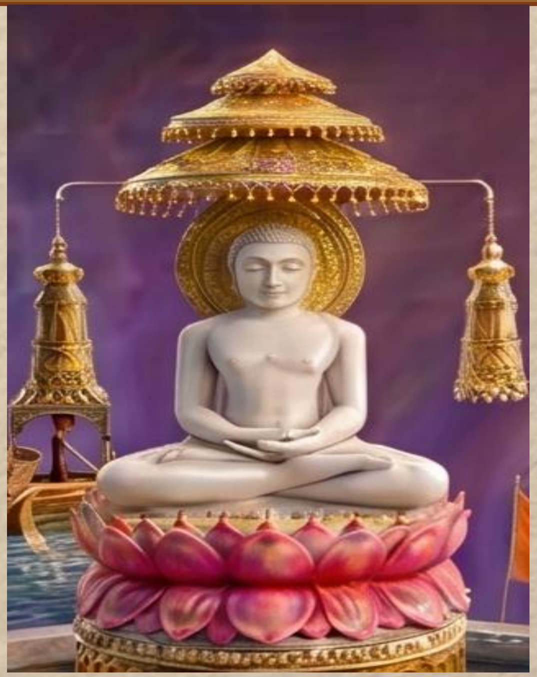

सिद्धे जिणिंदचंदे, आयरिय-उवज्झाय-साहुगणे ।
वंदिय सम्मद्दंसण-चरित्तलद्धिं परूवेमो ॥1॥

चरिमे पढमं विग्घं, चउदंसण उदयसत्तवोच्छिण्णा ।
से काले जोगिजिणो, सव्वण्हु सव्वदरसी य ॥610॥

- अन्वयार्थ: (चरिमे) क्षीणकषाय गुणस्थान के अंत समय में (पढमं) प्रथम अर्थात् पाँच ज्ञानावरण (विग्घं) पाँच अन्तराय और (चउदंसण) चार दर्शनावरण – ये चौदह कर्म प्रकृतियाँ (उदयसत्तवोच्छिण्णा) उदय और सत्ता से व्युच्छिन्न हुई।
- (से काले) अनन्तर समय में (जोगिजिणो) सयोगी जिन (सव्व सव्वण्हु) सर्वज्ञ (य) और (सव्वदरसी) सर्वदर्शी होते हैं ॥610॥

सयोगकेवली जिन

क्षीणकषाय के अंतिम समय में एकत्व-वितर्क-अवीचार शुक्ल ध्यान के द्वारा शेष घाति कर्मों का क्षय होता है ।

याने 5 ज्ञानावरण, 4 दर्शनावरण और 5 अंतराय – ऐसे 14 कर्मों का स्वमुख से अंतिम उदय होकर उदय-व्युच्छित्ति और सत्त्व-व्युच्छित्ति होती है ।

क्षय होने के अनंतर समय में सर्वज्ञ और सर्वदर्शी होकर सयोगकेवली बन जाते हैं । अनंत-चतुष्टय प्रकट होता है । उनका शरीर निगोद-रहित परम-औदारिक हो जाता है।

अब मात्र चार अघाति कर्मों का सत्त्व शेष रहा है । इनमें नाम-गोत्र-वेदनीय का असंख्यात वर्ष प्रमाण सत्त्व शेष है ।

घाति, अघाति कर्म का युगपत् क्षय क्यों नहीं ?

शंका- घातिकर्मों के साथ ही चारों अघाति कर्मों का क्षय क्यों नहीं होता है ? वे भी तो कर्म ही हैं ।

समाधान- यद्यपि घाति और अघाति दोनों कर्म हैं, परंतु विशेष-घात की अपेक्षा दोनों में अंतर है ।

घाति कर्म की जितनी स्थिति नष्ट की जाती है, उतनी अघाति की नहीं घात की है । इसलिये अघाति का सत्त्व अभी भी असंख्यात वर्ष प्रमाण शेष है ।

अघाति कर्म; घाति कर्म के समान अप्रशस्त नहीं हैं । इसलिये उसका घात अल्प-अल्प होता है । यथा मोहनीय अप्रशस्ततम होने से उसका सूक्ष्मसांपराय में नाश हुआ । तीन घातिया अप्रशस्ततर होने से उनका नाश क्षीणकषाय में हुआ । 3 अघातिया कम अप्रशस्त (कर्म की अपेक्षा) होने से उनका नाश अयोगकेवली गुणस्थान के अंत में होगा ।

आयुकर्म का कांडकघात नहीं होता है । अत: शेष आयुपर्यंत जीवन रहते हुए 3 अघाति कर्मों का उदय आवश्यक है । इसलिये भी अघाति कर्मों का घाति कर्मों के साथ क्षय नहीं होता ।

कर्मक्षय का तात्पर्य

बंध की अपेक्षा घाति कर्मों का और जीवप्रदेशों का एकस्वरूप परिणमन होता था । बंधन के कारणों के प्रतिपक्षभूत मोक्ष के कारणभूत परिणामरूपी यंत्र के द्वारा पेलने पर जीवप्रदेशों से कर्म प्रदेशों का अलग होना ही क्षय है ।

जीव से अलग होने पर अकर्मभाव परिणत कर्म पुद्गलों का पुद्गलपने से नाश नहीं होता है । वे कर्म से अकर्मरूप होते हैं । पुनः किसी अन्य जीव के परिणाम का निमित्त पाकर कर्मरूप हो सकते हैं ।

www.JainKosh.org

सयोग-केवली का निगोद रहित शरीर

शंका- केवली भगवान का शरीर निगोदरहित कैसे हुआ ?

समाधान- क्षीणकषाय के काल के दौरान प्रतिसमय शरीर में स्थित निगोदिया जीव स्व-आयु पूर्ण होने से मरते हैं । प्रतिसमय मरने वाले जीवों की संख्या बढ़ती जाती है ।

इस प्रकार जीवों का मरण होते रहने से और नवीन उत्पत्ति नहीं होने से क्षीणकषाय के अंतिम समय में समस्त निगोदिया जीवों का अभाव होता है।

ऐसे केवली भगवान का शरीर निगोदरहित परम-औदारिक होता है ।

यह अधिक क्रम से मरण का क्रम इस प्रकार होता है

क्षीणकषाय का काल	मरण संख्या	अल्प-बहुत्व
प्रथम समय	अनंत निगोद जीव	स्तोक
द्वितीय समय से पृथक्त्व आवली पर्यंत	पूर्व समय मृत + $\frac{\text{पूर्व समय मृत}}{\text{आवली/असंख्यात}}$	असंख्यात भाग अधिक
अनंतर समय से आवली/असंख्यात काल शेष रहने तक	पूर्व समय मृत + $\frac{\text{पूर्व समय मृत}}{\text{संख्यात}}$	संख्यात भाग अधिक
अनंतर समय से अंतिम समय तक	पूर्व समय मृत × $\frac{\text{पल्य}}{\text{असंख्यात}}$	असंख्यात गुणा

प्रश्न- इतने जीव मारने पर वहाँ क्षीणकषाय में यथाख्यात चारित्र कैसे कहा है ?

उत्तर- यहाँ जीवों को मारा नहीं है; वे स्व-आयु पूर्ण करके मरण को प्राप्त हुए हैं । शुक्लध्यान के बल से उनकी उत्पत्ति का निरोध होता है । अत: उन्हें कोई दोष नहीं लगता है ।

खीणे घादिचउक्के, णंतचउक्कस्स होदि उप्पत्ती ।
सादी अपज्जवसिदा, उक्कस्साणंतपरिसंखा ॥611॥

- अन्वयार्थ: (घादिचउक्के खीणे) चार घाति कर्मों का नाश होने पर (णंतचउक्कस्स) अनन्त चतुष्टय की (उप्पत्ती) उत्पत्ति (होदि) होती है।
- यह अनन्त चतुष्टय (सादी) आदि सहित और (अपज्जवसिदा) अन्त से रहित अविनाशी है और (उक्कस्साणंतपरिसंखा) उत्कृष्ट अनन्त संख्यायुक्त है ॥611॥

अनंत चतुष्टय

इस कारण से	अनंत चतुष्टय ...
चार घाति कर्मों का क्षय होने से	उत्पन्न हुआ ।
उत्पन्न होने के कारण	सादि है ।
अंतरहित होने के कारण	अविनाशी है ।
अविभाग-प्रतिच्छेदों की अपेक्षा उत्कृष्ट अनंतानंत प्रमाण होने से	अनंत संख्या युक्त है ।

आवरणदुगाण खये, केवलणाणं च दंसणं होदि ।
विरियंतरायियस्य य, खएण विरियं हवे णंतं ॥612॥
णवणोकसायविग्घचउक्काणं च य खयादणंतसुहं ।
अणुवममव्वाबाहं, अप्पसमुत्थं णिरावेक्खं ॥613॥

- अन्वयार्थ: (आवरणदुगाण खये) दो आवरणों का क्षय होने से (केवलणाणं) केवलज्ञान और (दंसणं) केवलदर्शन (होदि) होता है।
- (विरियंतरायियस्स य) वीर्यान्तराय कर्म के (खएण) क्षय से (णंतं विरियं) अनन्तवीर्य (हवे) होता है ।
- (णवणोकसायविग्घचउक्काणं) नौ नोकषाय और अंतराय-चतुष्क के (खयादणंतसुहं) क्षय से अनन्त सुख प्रगट होता है (य) और वह सुख (अणुवमं) अनुपम अर्थात् उपमारहित (अव्वाबाहं) अव्याबाध (अप्पसमुत्थं) आत्मा से उत्पन्न और (णिरावेक्खं) निरपेक्ष है ॥612-613॥

www.JainKosh.org

अनंत चतुष्टय

गुण	किस कर्म के अभाव से
अनंत ज्ञान	ज्ञानावरण
अनंत दर्शन	दर्शनावरण
अनंत वीर्य	वीर्यांतराय
अनंत सुख	9 नोकषाय, दान आदि 4 अंतराय

केवलज्ञान

इन्द्रिय, मन, प्रकाश आदि की सहायतारहित

सूक्ष्म, अंतरित, दूर पदार्थों का प्रत्यक्ष, युगपत् ज्ञाता

केवलदर्शन

उसी प्रकार केवलदर्शन सर्व पदार्थों को युगपत् देखता है ।

जैसे चंद्रमा में श्वेत वर्ण और शीतलता युगपत् है, वैसे केवली को केवलज्ञान और केवलदर्शन युगपत् प्रवर्तमान है । छद्मस्थ की तरह क्रम से नहीं हैं ।

अनंत वीर्य

अप्रतिहत सामर्थ्ययुक्त शक्ति

अनंत वीर्य से समस्त ज्ञेयों को जानते हुए भी खेद नहीं होता ।

इसके बिना उपयोग अवस्थित नहीं रह सकता ।

अनंत सुख

अनुपम

- ऐसा आह्लाद अन्यत्र कहीं भी नहीं है ।

अव्याबाध

- किसी से बाधित नहीं होता ।

आत्म-समुत्थ

- आत्मा से ही स्वयं उत्पन्न होता है ।

निरपेक्ष

- इन्द्रिय, विषयों की अपेक्षा से रहित है ।

ऐसा अनाकुल लक्षण वाला अनंत सुख; ज्ञान-वैराग्य की उत्कृष्टता को प्राप्त केवली भगवान को होता है ।

सत्तण्हं पयडीणं, खयादु खइयं तु होदि सम्मत्तं ।
वरचरणं उवसमदो, खयदो दु चरित्तमोहस्स ॥614॥

- अन्वयार्थ: (सत्तण्हं पयडीणं खयादु) सात प्रकृतियों के क्षय से (खइयं सम्मत्तं) क्षायिक सम्यक्त्व (होदि) होता है और
- (चरित्तमोहस्स उवसमदो खयदो दु) चारित्रमोह के उपशम या क्षय से (वरचरणं) उत्कृष्ट यथाख्यात चारित्र होता है ॥614॥

क्षायिक सम्यक्त्व आदि

गुण	कर्म
क्षायिक सम्यक्त्व	3 दर्शनमोह, 4 अनंतानुबंधी के क्षय से
यथाख्यात चारित्र	21 चारित्र मोह के क्षय से अथवा उपशम से

जं णोकसायविग्घचउक्काण बलेण दुक्खपहुदीणं ।
असुहपयडिणुदयभवं, इंदियखेदं हवे दुक्खं ॥615॥
जं णोकसायविग्घचउक्काण बलेण सादपहुदीणं।
सुहपयडीणुदयभवं, इंदियतोसं हवे सोक्खं ॥616॥

- अन्वयार्थः (णोकसायविग्घचउक्काण) नोकषाय और अंतराय चतुष्क के उदय की (बलेण) सहायता से (दुक्खपहुडदीणं) दुःखरूप असाता वेदनीय आदि (असुहपयडिणुदयभवं) अशुभ प्रकृतियों के उदय से होने वाला (इंदियखेदं) इंद्रियों को खेदरूप (दुक्खं हवे) दुःख है ॥615॥
- अन्वयार्थः (णोकसायविग्घचउक्काण) नोकषाय और अंतराय चतुष्क के उदय की (बलेण) सहायता से (सादपहुदीणं) साता वेदनीय आदि (सुहपयडीणुदयभवं) शुभ प्रकृतियों के उदय से उत्पन्न (जं) जो (इंदियतोसं) इंद्रियों का संतोष अर्थात् किंचित् निराकुलतारूप (सोक्खं) सुख (हवे) होता है ॥616॥

www.JainKosh.org

सुख-दु:ख

इन्द्रिय दु:ख	इन्द्रिय सुख
नोकषाय और अंतराय-चतुष्क के उदय के बल से	
असाता आदि अशुभ प्रकृतियों के उदय से होने वाला	साता आदि शुभ प्रकृतियों के उदय से होने वाला
इंद्रियों को खेदरूप	इंद्रियों का संतोष (किंचित् निराकुलता)
दु:ख है।	सुख है।

केवली को मोहनीय और अंतराय कर्म का क्षय होने से

इन्द्रिय खेदरूप दु:ख

इन्द्रियों की संतुष्टि रूप सुख

नहीं है।

णट्ठा य रायदोसा, इंदियणाणं च केवलिम्हि जदो ।
तेण दु सादासादजसुहदुक्खं णत्थि इंदियजं ॥617॥

- अन्वयार्थ: (जदो) जिस कारण से (केवलिम्हि) केवलियों में (रायदोसा) राग-द्वेष (णट्ठा) नष्ट हुए हैं (च) और (इंदियणाणं) इंद्रियज्ञान नष्ट हुआ है
- (तेण) उस कारण से केवलियों के (सादासादजसुहदुक्खं इंदियजं) साता-असाता वेदनीय के उदय से उत्पन्न इंद्रियजनित सुख-दुःख (णत्थि) नहीं है ॥617॥

www.JainKosh.org

केवली भगवान को भी साता-असाता का उदय है,
अतः वे भी इन्द्रिय विषयों से सुखी-दुःखी होते हैं ?

☛ चूंकि केवली भगवान के

4 प्रकार की माया → 4 प्रकार का लोभ → 3 प्रकार के वेद → हास्य, रति — इनरूप राग का

4 प्रकार का क्रोध → 4 प्रकार का मान → भय-जुगुप्सा → अरति, शोक — इनरूप द्वेष का

☛ निर्मूल नाश हुआ है ।

इसलिये केवली भगवान को साता-असाता जनित सुख-दुःख नहीं है ।

केवली भगवान को भी साता-असाता का उदय है,
अतः वे भी इन्द्रिय विषयों से सुखी-दुःखी होते हैं ?

वेदनीय का सहकारी कारण मोहनीय है । इसके अभाव में वेदनीय का उदय अपना कार्य करने में समर्थ नहीं है ।

2. तथा केवली भगवान के क्षयोपशमरूप परोक्ष
मति, श्रुतज्ञान नहीं पाये जाते
अर्थात् इन्द्रिय-ज्ञान नहीं होता ।

इसलिये केवली भगवान को साता-असाता जनित सुख-दुःख नहीं है ।

सूत्र में केवली के 11 परीषह कही हैं । यथा- 'एकादश जिने' । वे तो उनके पायी जाती हैं । यह कैसे?

चूँकि असाता का उदय वहाँ होता है । और सामान्यतया असाता के उदय से परीषह होती है । ऐसा कारण-कार्य देखकर उपचार से केवली के परीषह कही है ।

मुख्यपने तो तद्रूप कार्य का अभाव होने से परीषह नहीं है।

जिस प्रकार उपघात, परघात नामकर्म का उदय होने पर भी घातिकर्म के उदय के बिना अपना और दूसरों का घात नहीं करता, वैसे असाता का उदय होने पर भी मोह के अभाव में वह दु:ख या परीषह रूप कार्य उत्पन्न नहीं करता ।

इसलिए केवली के असाता से उत्पन्न आहारादि क्रिया मानना युक्त नहीं है ।

समयट्ठिदिगो बंधो, सादस्सुदयप्पिगो जदो तस्स ।
तेण असादस्सुदओ, सादसरूवेण परिणमदि ॥618॥

- अन्वयार्थ: (जदो) जिस कारण से (तस्स) उन्हें (केवलियों को) (समयट्ठिदिगो) एक समय स्थितिवाला (सादस्स) साता वेदनीय का (बंधो) बंध (उदयप्पिगो) उदयात्मक है
- (तेण) उस कारण से उन्हें (असादस्सुदओ) असाता का उदय (सादसरूवेण) सातास्वरूप से (परिणमदि) परिणमता है ॥618॥

www.JainKosh.org

केवली भगवान के साता-असाता

1. एक समय की स्थिति वाला बंध है, अत: वह उदय स्वरूप ही है । इसका बंधते ही उदय आकर खिरना होता है । अत: साता का उदय बना ही रहता है ।

2. अनुभाग काण्डकघात के कारण असाता का अनुभाग अत्यल्प रह गया है । इस कारण भी असाता का उदय फल नहीं दिखा पाता ।

केवली के साता का उदय निरंतर रहता है ।

अतः असाता के निमित्त से होने वाली परीषह जिनेन्द्र में नहीं होती ।

पडिसमयं दिव्वतमं, जोगी णोकम्मदेहपडिबद्धं ।
समयपबद्धं बंधदि, गलिदवसेसाउमेत्तठिदी ॥619॥

- अन्वयार्थ: (जोगी) सयोगी जिन (पडिसमयं) प्रत्येक समय में (दिव्वतमं) दिव्यतम ऐसा (णोकम्मदेहपडिबद्धं) नोकर्म अर्थात् औदारिक शरीर संबंधी (समयपबद्धं) समयप्रबद्ध को (बंधदि) बाँधता है।
- (गलिदवसेसाउमेत्तठिदी) उस समयप्रबद्ध की स्थिति सयोगिजिन की जितनी आयु गलकर शेष रही है उतनी जाननी चाहिए ॥619॥

प्रश्न- यदि केवली भगवान को आहार ग्रहण नहीं है, तो आहार मार्गणा में केवली भगवान को आहारक कैसे कहा है ?

उत्तर- आहार मार्गणा में नोकर्म वर्गणाओं के ग्रहण करने को आहार कहते हैं ।

केवली भगवान के योग का सद्भाव होने से वे प्रतिसमय दिव्यतम नोकर्म याने औदारिक शरीर संबंधी समयप्रबद्ध को ग्रहण करते हैं ।

प्रत्येक नोकर्म समयप्रबद्ध की स्थिति गलितावशेष आयु प्रमाण रहती है ।

www.JainKosh.org

6 प्रकार के आहार

ओज	लेप्य	मानसिक	कवल	कर्म	नोकर्म
अंडे को ऊष्मा देने रूप	जो वनस्पति पर लेप किया जाता	देवताओं द्वारा	मनुष्य, तिर्यंच को, जो ग्रास करके आहार ग्रहण होता	कर्म का ग्रहण	नोकर्म वर्गणा का ग्रहण

केवली भगवान के कर्म, नोकर्म आहार होता है; कवलाहार नहीं होता है।

www.JainKosh.org

सयोगकेवली में गुणश्रेणि

सयोगकेवली होने के प्रथम समय से 3 अघाति कर्मों की उदयादि अवस्थित गुणश्रेणि होती है ।

यहाँ अपकृष्ट द्रव्य क्षीणकषाय के अपकृष्ट द्रव्य से असंख्यात गुणा होता है । तथा गुणश्रेणि का आयाम पूर्व आयाम से संख्यात गुणा हीन होता है ।

प्रत्येक समय का अपकृष्ट द्रव्य और आयाम सदृश होता है ।

गुणश्रेणि अवस्थित होने से उपरितन स्थिति का एक-एक निषेक गुणश्रेणी में मिलता जाता है ।

अपकृष्ट द्रव्य के पूर्ववत् दो भाग होते हैं-

असंख्यातवां भाग :-गुणश्रेणि द्रव्य

- गुणश्रेणि के प्रथम निषेक में थोड़ा द्रव्य देता है ।
- द्वितीयादि निषेकों में असंख्यात गुणा क्रम से शीर्षपर्यंत देता है ।

असंख्यात बहुभाग :– उपरितन स्थिति द्रव्य

- शीर्ष के ऊपर उपरितन स्थिति के प्रथम निषेक में शीर्ष में दिये द्रव्य से असंख्यात गुणा द्रव्य देता है ।
- द्वितीयादि निषेकों में चयहीन क्रम से अतिस्थापनावली के नीचे तक द्रव्य देता है ।

सयोगकेवली के द्वितीयादि समयों में भी इसी प्रकार गुणश्रेणि जानना ।

णवरि समुग्घादगदे, पदरे तह लोगपूरणे पदरे ।
णत्थि तिसमये णियमा, णोकम्माहारयं तत्थ ॥620॥

- अन्वयार्थ: (णवरि) इतनी विशेषता है कि (समुग्घादगदे) समुद्घातगत (तत्थ) केवलियों में (पदरे) प्रतर (लोगपूरणे) लोकपूरण (तह) तथा वैसे ही (पदरे) प्रतर – इन (तिसमये) तीन समयों में (णियमा) नियम से (णोकम्माहारयं) नोकर्म आहार (णत्थि) नहीं है ॥620॥

www.JainKosh.org

अनाहारक सयोग केवली

सयोग-केवली जब केवली-समुद्घात करते हैं, तब प्रतर, लोकपूरण और प्रतर – ऐसे तीन समयों में अनाहारक होते हैं ।

उस समय नोकर्म वर्गणाओं का ग्रहण नहीं होता । परंतु कर्म वर्गणा का ग्रहण होता है ।

इन तीन समयों को छोड़कर शेष काल में सयोगिजिन आहारक ही होते हैं ।

अंतोमुहुत्तमाऊ, परिसेसे केवली समुग्घादं ।
दंड कवाटं पदरं, लोगस्स य पूरणं कुणदी ॥621॥

- अन्वयार्थ: (अंतोमुहुत्तमाऊ परिसेसे) अंतर्मुहूर्तप्रमाण आयु शेष रहने पर (केवली) केवली भगवान (दंड) दंड, (कवाटं) कपाट, (पदरं) प्रतर (य) और (लोगस्स पूरणं) लोकपूरणरूप से (समुग्घादं) समुद्घातक्रिया (कुणदी) करते हैं ॥621॥

सयोगकेवली काल

इस प्रकार सयोगकेवली तीर्थंकर और सामान्य केवली अपनी आयु स्थिति पर्यंत विहार करते हुए रहते हैं । इनका काल है –

केवली	जघन्य	उत्कृष्ट
तीर्थंकर केवली	पृथक्त्व वर्ष	1 कोटि पूर्व से कुछ कम
सामान्य केवली	अंतर्मुहूर्त	

आयु कर्म की स्थिति से शेष 3 अघाति कर्मों की स्थिति अधिक होने पर केवली समुद्घात होता है ।

केवली समुद्घात द्वारा 3 अघाति की स्थिति को घातकर आयु के लगभग स्थिति कर दी जाती है ।

केवली समुद्घात

आयु के अंतर्मुहूर्त शेष रहने पर समुद्घात करते हैं ।

मूल शरीर को न छोड़ते हुए आत्मप्रदेशों का शरीर से बाहर फैलना समुद्घात कहलाता है ।

केवली द्वारा किये गये समुद्घात को केवली समुद्घात कहते हैं ।

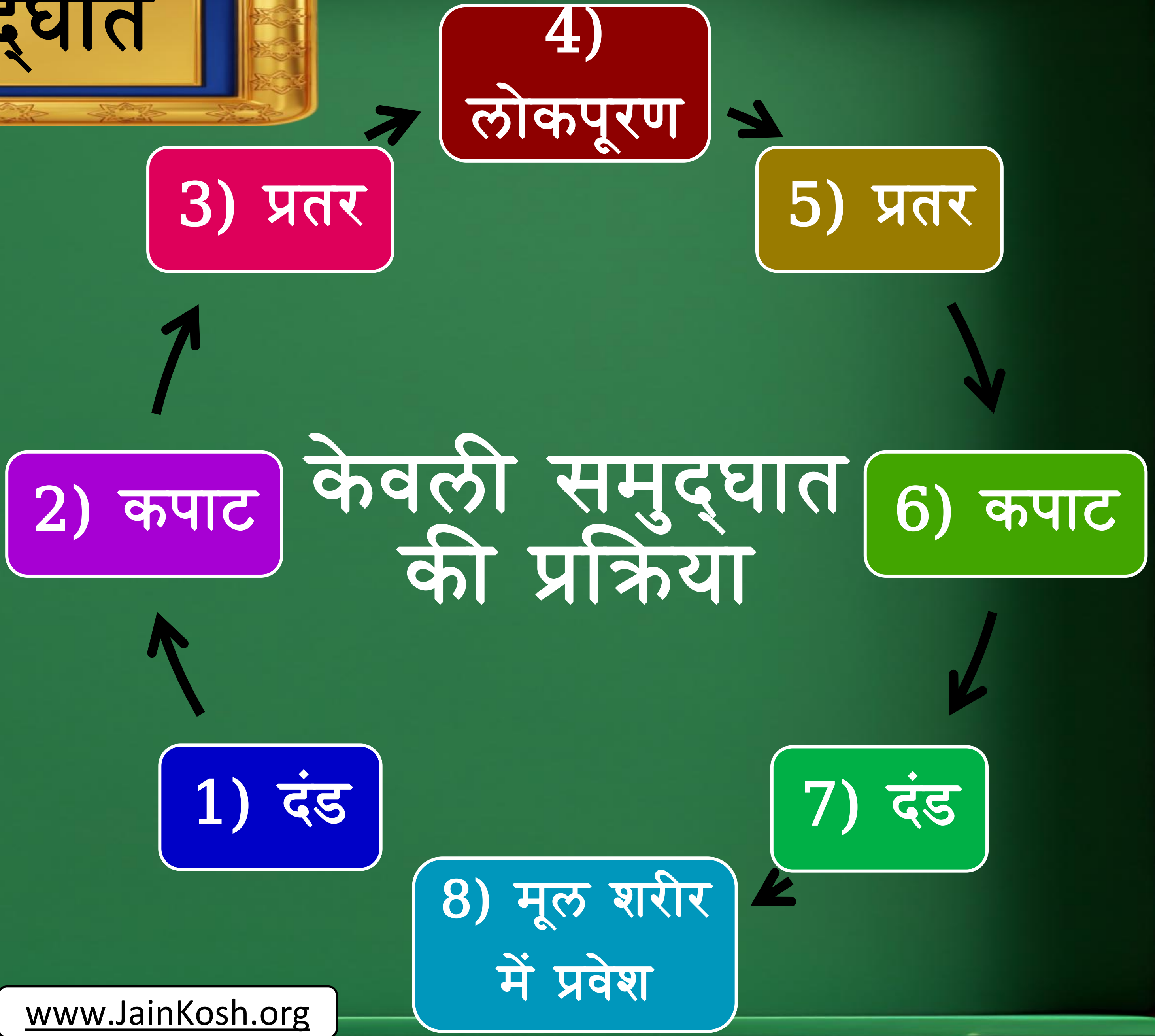

www.JainKosh.org

हेट्ठा दंडस्संतोमुहुत्तमावज्जिदं हवे करणं ।
तं च समुग्घादस्स य, अहिमुहभावो जिणिंदस्स ॥622॥
सट्ठाणे आवज्जिदकरणेवि य णत्थि ठिदिरसाण हदी ।
उदयादि अवट्ठिदया, गुणसेढी तस्स दव्वं च ॥623॥

- अन्वयार्थ: (दंडस्स अंतोमुहुत्तं हेट्ठा) दण्ड समुद्घात करने के अंतर्मुहूर्त काल पूर्व में (आवज्जिदं करणं) आवर्जित करण (हवे) होता है।
- (तं च) और वह आवर्जितकरण (जिणिंदस्स) जिनेन्द्रदेव का (समुग्घादस्स अहिमुहभावो) समुद्घात क्रिया करने के प्रति सम्मुखपना है ॥622॥
- अन्वयार्थ: (सट्ठाणे) स्वस्थान में (य) और (आवज्जिदकरणेवि) आवर्जितकरण में भी (ठिदिरसाण) स्थिति और अनुभाग का (हदी) घात (णत्थि) नहीं होता है।
- तथा (उदयादि अवट्ठिदया) उदयादि अवस्थितरूप (गुणसेढी) गुणश्रेणी है (च) और (तस्स) उस गुणश्रेणि का (दव्वं) द्रव्य भी अवस्थित है ॥623॥

आवर्जितकरण

दंड समुद्घात करने के अंतर्मुहूर्त पूर्व आवर्जितकरण प्रारंभ होता है ।

केवली समुद्घात के अभिमुख भाव को आवर्जितकरण कहते हैं ।

आवर्जितकरणरूप क्रिया के बिना केवली समुद्घात की उत्पत्ति नहीं होती ।

आवर्जितकरण से पूर्व के काल को स्वस्थान कहते हैं ।

आवर्जितकरण के कार्य

सयोगकेवली के आवर्जितकरण के पूर्व तक स्थितिकांडक और अनुभागकांडक नहीं होते हैं । मात्र गुणश्रेणि निर्जरा होती है ।

आवर्जितकरण में भी अनुभाग, स्थितिघात नहीं होता है ।

ıKosh.org

आवर्जित करण में गुणश्रेणि

आवर्जितकरण में उदयादि अवस्थित गुणश्रेणी होती है ।

यहाँ गुणश्रेणि आयाम पूर्व के स्वस्थान के गुणश्रेणि आयाम से संख्यात गुणाहीन होता है । इसलिये पूर्व शीर्ष से वर्तमान शीर्ष नीचे होता है ।

गुणश्रेणि का अपकृष्ट किया द्रव्य पूर्व के अवस्थित अपकृष्ट द्रव्य से असंख्यात गुणा होता है ।

यह गुणश्रेणि का आयाम तथा द्रव्य का प्रमाण आवर्जितकरण के प्रथम समय से द्विचरमकांडक की अंतिम फाली तक समान जानना ।

शंका- स्वस्थान में और आवर्जितकरण में केवलियों के अवस्थित परिणाम होने पर भी गुणश्रेणि निक्षेप में विसदृशता किस कारण से है ?

समाधान- परिणामों में भेद का अभाव होने पर भी अंतर्मुहूर्त मात्र आयु शेष रहने के निमित्त से यह विसदृशता बनती है ।

एक कार्य होने में अनेक कारण चाहिए । यहाँ परिणामरूप कारण सदृश होने पर भी आयुरूप कारण भिन्न हो गया है ।

www.Jai

जोगिस्स सेसकाले, गयजोगी तस्स संखभागो य ।
जावदियं तावदिया, आवज्जिदकरणगुणसेढी ॥624॥

- अन्वयार्थ: (जोगिस्स सेसकाले) सयोगकेवली का शेष रहा काल (गयजोगी) अयोगकेवली का काल (य) और (तस्स संखभागो) उसका संख्यातवाँ भाग (जावदियं) सभी मिलकर जितना काल है (तावदिया) उतना (आवज्जिदकरणगुणसेढी) आवर्जितकरण का गुणश्रेणि आयाम है ॥624॥

www.JainKosh.org

गुणश्रेणि का आयाम = शेष सयोगकेवली काल + अयोगकेवली काल + $\frac{\text{अयोगकेवली काल}}{\text{संख्यात}}$

यहाँ द्रव्य देने का विधान पूर्ववत् जानना ।

इस प्रकार अंतर्मुहूर्त काल तक क्रिया-विशेष होती है । तत्पश्चात् केवली समुद्घात होता है ।

आवर्जित करण में निषेक स्थिति

आवर्जित करण का गुणश्रेणि आयाम

www.JainKosh.org

दंड समुद्घात

कायोत्सर्ग स्थित केवली (उत्कृष्ट अवगाहना की अपेक्षा) का विस्तार

$= \frac{\text{लंबाई}}{9}$

$= \frac{525 \text{ धनुष}}{9} = \frac{525 \times 96 \text{ अंगुल}}{9} = \frac{525 \times 96}{9 \times 500} = 11.2$ प्रमाण अंगुल

	कायोत्सर्ग स्थित केवली	पद्मासन स्थित केवली
ऊँचाई	14 राजू	
विस्तार	12 अंगुल	12 अंगुल × 3 = 36 अंगुल पद्मासन में विस्तार; कायोत्सर्ग के विस्तार से तिगुना होता है ।
क्षेत्रफल	$(\text{विस्तार}/2)^2 \times \sqrt{10}$	
	$(\frac{12 \text{ अंगुल}}{2})^2 \times \sqrt{10}$	$(\frac{36 \text{ अंगुल}}{2})^2 \times \sqrt{10}$
घनफल	क्षेत्रफल × ~14 राजू	

विशेष – विस्तार का प्रमाण उत्कृष्ट अवगाहना से 11.2 प्रमाण अंगुल ही आता है । परंतु टीका में धवला के आधार से 108 प्रमाणांगुल ऊँचाई मानकर (108/9 = 12) 12 अंगुल विस्तार बताया है । इस अंतर का कारण अस्पष्ट है । आगे टीका में दिये अनुसार 12 अंगुल ही विस्तार मानकर बताया है ।

कपाट समुद्घात

द्वितीय समय में केवली जिन कपाट समुद्घात करते हैं ।

कपाट के आकार के समान आत्मप्रदेश फैलते हैं । इसलिये इसे कपाट समुद्घात कहते हैं ।

- पूर्व दिशा के सन्मुख कायोत्सर्ग आसनयुक्त केवलियों के आत्म-प्रदेश उत्तर-दक्षिण दिशा में 7 राजू प्रमाण फैलते हैं ।
- घनफल = 12 अंगुल × 7 राजू × 14 राजू
- = 12 अंगुल × जगतश्रेणी × 2 × जगतश्रेणी
- = 24 अंगुल प्रमाण जगतप्रतर
- पद्मासन से स्थित केवली का विस्तार तिगुना होने से पद्मासन से स्थित कपाट समुद्घातगत केवली का घनफल 24 × 3 = 72 अंगुल प्रमाण जगतप्रतर हुआ ।

उत्तराभिमुख केवली

उत्तराभिमुख केवली के पूर्व-पश्चिम में आत्मप्रदेश फैलते हैं ।

पूर्व-पश्चिम में नीचे सात राजू, क्रम से हीन होते मध्य में 1 राजू, पुन: बढ़ते हुए ब्रह्मस्वर्ग के निकट 5 राजू, पुन: कम होते हुए ऊर्ध्व लोक में 1 राजू प्रमाण फैलते हैं ।

इनका औसत $= \frac{7+1+5+1}{4} = \frac{14}{4} =$ 3.5 राजू है ।

कायोत्सर्ग स्थित उत्तराभिमुख केवली का प्रतर समुद्घातगत घनफल	पद्मासन स्थित उत्तराभिमुख केवली का प्रतर समुद्घातगत घनफल
= लंबाई × चौड़ाई × ऊँचाई = 14 राजू × 12 अंगुल × 3.5 राजू = 2 जगतश्रेणी × 12 अंगुल × 3.5 राजू = 12 अंगुल × श्रेणी × श्रेणी = 12 अंगुल प्रमाण जगतप्रतर	= 12 अंगुल प्रमाण जगतप्रतर × 3 = 36 अंगुल प्रमाण जगतप्रतर

www.JainKosh.org

प्रतर समुद्घात

तृतीय समय में केवली जिन; प्रतर समुद्घात करते हैं ।

इसी का अन्य नाम मंथ समुद्घात है । जिसके द्वारा कर्म नष्ट किये जाते हैं, उसे मंथ कहते हैं ।

इस समुद्घात में केवली भगवान के आत्म-प्रदेश लोक के अंत में स्थित वातवलयों को छोड़कर संपूर्ण लोकाकाश में फैल जाते हैं ।

इस समय लोक का असंख्यात बहुभाग क्षेत्र केवली द्वारा व्याप्त हो जाता है । मात्र वातवलय प्रमाण असंख्यातवां भाग शेष रहता है ।

www.JainKosh.org

लोकपूरण समुद्घात

चतुर्थ समय में लोकपूरण समुद्घात होता है ।

इसमें वातवलय सहित सर्वलोक में आत्म-प्रदेश फैल जाते हैं ।

संपूर्ण लोक को जीव-प्रदेशों से पूर्ण करता है, इसलिये इसे लोकपूरण समुद्घात कहते हैं ।

ठिदिखंडमसंखेज्जे, भागे रसखंडमप्पसत्थाणं ।
हणदि अणंता भागा, दंडादी चउसु समएसु ॥625॥

- अन्वयार्थ: (दंडादी चउसु समएसु) दंडादि चार समयों में (ठिदिखंडं) स्थितिकाण्डक (असंखेज्जे भागे) असंख्यात बहुभागमात्र और (अप्पसत्थाणं) अप्रशस्त कर्मों का (रसखंडं) अनुभागकांडक (अणंता भागा) अनन्त बहुभागमात्र (हणदि) घातता है ॥625॥

www.JainKosh.org

समुद्घात में संभव कार्य

दंडादि चारों समयों में स्थितिकांडक और अनुभागकांडकघात होता है ।

अनुभागकांडक का आयाम अप्रशस्त प्रकृतियों का अनंत बहुभाग प्रमाण होता है । प्रशस्त प्रकृतियों का अनुभागघात नहीं होता है ।

गुणश्रेणि निर्जरा आवर्जितकरण के समान होती है ।

यहाँ 3 कर्मों की शेष रखी स्थिति; आयु प्रमाण स्थिति से संख्यात गुणी है । इसका कांडकघात आगे किया जाएगा ।

समुद्घात में स्थितिकांडकघात

3 अघाति कर्मों का स्थितिकांडक का आयाम असंख्यात बहुभाग प्रमाण होता है ।

दंड समुद्घात में सत्ता में शेष रही स्थिति में असंख्यात का भाग देकर लब्ध एक भाग शेष रखता है । बहुभाग का नाश करता है ।

कपाट और प्रतर में भी पुनः असंख्यातवां भाग रखकर शेष का नाश करता है ।

लोकपूरण समुद्घात में अंतर्मुहूर्त मात्र स्थिति शेष रखकर शेष बहुभाग प्रमाण सर्व स्थिति का घात करता है ।

समुद्घात के चार समयों में स्थितिकाण्डकघात का चित्र

समुद्घात	तीन अघाति कर्मों का स्थितिकाण्डक	शेष स्थिति
	बहुभागप्रमाण	एकभागप्रमाण
दण्ड	$\frac{\text{प}\ a^{\overline{1}}}{a\ a}$	$\frac{\text{प}}{a\ a}$
कपाट	$\frac{\text{प}\ a^{\overline{1}}}{a\ a\ a}$	$\frac{\text{प}}{a\ a\ a}$
प्रतर	$\frac{\text{प}\ a^{\overline{1}}}{a\ a\ a\ a}$	$\frac{\text{प}}{a\ a\ a\ a}$
लोकपूरण	$\frac{\text{प}\ -\ २११}{a\ a\ a\ a}$	२११

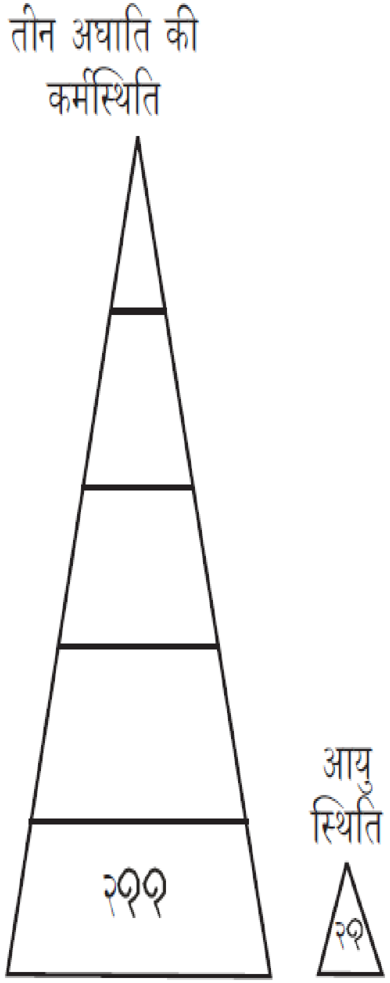

ainkosh.org

चउसमएसु रसस्स य, अणुसम ओवट्टणा असत्थाणं ।
ठिदिखंडस्सिगिसमयिगघादो अंतोमुहुत्तुवरिं ॥626॥

- अन्वयार्थ: चार समयों में (असत्थाणं) अप्रशस्त प्रकृतियों के (रसस्स) अनुभाग का (अणुसमओवट्टणा) प्रत्येक समय में अपवर्तन और (ठिदिखंडस्स) स्थितिखण्ड का (इगिसमयिगघादो) एक समय वाला घात होता है।
- (उवरिं) उसके अनन्तर (अंतोमुहुत्त) अन्तर्मुहूर्त कालवाले स्थितिकाण्डक और अनुभागकाण्डक होते हैं ॥626॥

एक समय का कांडकघात

इन दंडादि समुद्घात के चार समयों में अनुभाग का अपवर्तन एक-एक समय में ही हो जाता है।

तथा स्थितिकांडकघात भी एक-एक समय में पूर्ण हो जाता है । यह समुद्घात क्रिया का माहात्म्य है ।

समुद्घात के पश्चात् स्थिति-अनुभागकांडकघात में अंतर्मुहूर्त काल लगता है ।

जगपूरणम्हि एक्का, जोगस्स य वग्गणा ठिदी तत्थ ।
अंतोमुहुत्तमेत्ता, संखगुणा आउआ होदि ॥627॥

- अन्वयार्थ: (जगपूरणम्हि) लोकपूरण समुद्घात में (जोगस्स) योग की (एक्का वग्गणा) एक वर्गणा होती है।
- (तत्थ) वहाँ (आउआ) आयु की अपेक्षा अन्य कर्मों की (ठिदी) स्थिति (संखगुणा) संख्यातगुणी (अंतोमुहुत्तमेत्ता) अन्तर्मुहूर्त प्रमाण (होदि) होती है ॥627॥

समयोग

लोकपूरण समुद्घात के समय योग की एक वर्गणा होती है ।

इसके पूर्व और अनंतर आत्मा के प्रदेशों में हीनाधिक योगों के अविभागप्रतिच्छेद होते हैं । परंतु इस समय आत्मा के प्रत्येक प्रदेश में समान योग होता है । इसलिए इसे एक वर्गणा कहते हैं ।

सूक्ष्म निगोदिया के जघन्य योगस्थान की जघन्य वर्गणा से असंख्यात गुणे मध्यम वर्गणा के वर्ग के समान यहाँ प्रत्येक आत्मप्रदेश में योग के अविभागप्रतिच्छेद होते हैं ।

यह समयोग मात्र एक समय के लिए होता है । इसके पश्चात् पुनः पूर्वस्पर्धकरूप योग होता है ।

3 अघाति कर्मों की शेष स्थिति

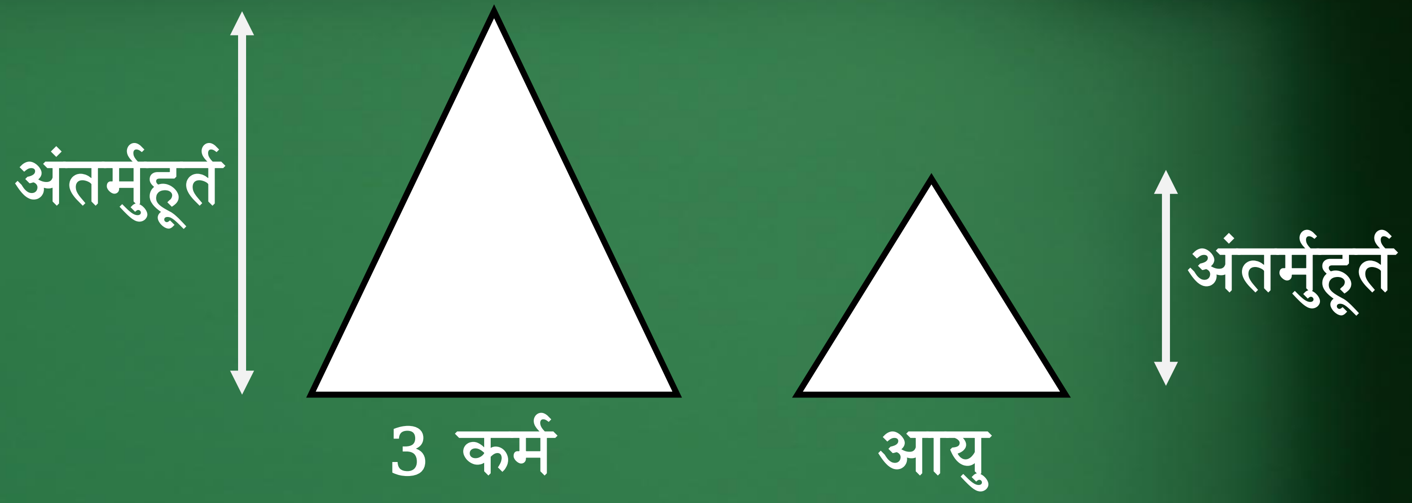

लोकपूरण के समय 3 अघाति कर्मों की स्थिति अंतर्मुहूर्त मात्र शेष रखता है ।

अर्थात् असंख्यात वर्ष वाली पल्य/असंख्यात प्रमाण स्थिति मात्र चार समयों में घात-घातकर अंतर्मुहूर्त प्रमाण कर दी ।

यह अंतर्मुहूर्त; शेष आयु कर्म के प्रमाण से संख्यात गुणा है ।

एत्तो पदर कवाडं, दंडं पच्चा चउत्थसमयम्हि ।
पविसिय देहं तु जिणो, जोगणिरोधं करेदीदि ॥628॥

- अन्वयार्थ: (एत्तो) इस लोकपूरण के अनन्तर (पदर कवाडं दंडं पच्चा) प्रतर, कपाट और दण्डसमुद्धात का आश्रय करके (चउत्थसमयम्हि) चौथे समय में (देहं) मूल शरीर में (पविसिय) प्रवेश करके (जिणो) जिनेन्द्र भगवान् (जोगणिरोधं) योग निरोध (करेदीदि) करते हैं ॥628॥

www.JainKosh.org

समुद्घात का संकोच

लोकपूरण समुद्घात के अनंतर समय में प्रतररूप से आत्म-प्रदेशों का संकोच होता है ।

आगे प्रत्येक समय में क्रम से कपाट, दंडरूप संकोच करके आठवें समय में मूल शरीर में प्रवेशरूप शरीर प्रमाण आत्म-प्रदेशों का संकोच होता है ।

इस प्रकार समुद्घात संपन्न होता है ।

www.JainKosh.org

इन समुद्घात के समय योग निम्न प्रकार होता है –

समुद्घात	योग
दंड (आरोहक, अवरोहक)	औदारिक काययोग
कपाट (आरोहक, अवरोहक)	औदारिक मिश्रकाययोग
प्रतर (आरोहक, अवरोहक)	कार्मण काययोग
लोकपूरण	कार्मण काययोग

लोकपूरण के अनंतर स्थिति और अनुभाग कांडकघात प्रारंभ होता है ।

संख्यात हजार कांडक होने के पश्चात् योगनिरोध की क्रिया प्रारंभ होती है ।

www.JainKosh.org

बादरमण वचि उस्सास, कायजोगं तु सुहुमजचउक्कं ।
रुंभदि कमसो बादरसुहुमेण य कायजोगेण ॥629॥

- अन्वयार्थ: (बादर-कायजोगेण) बादरकाययोग द्वारा (बादरमण वचि उस्सास कायजोगं तु) बादर मनोयोग, वचनयोग, उच्छ्‌वास और काययोग को (कमसो रुंभदि) क्रम से नष्ट करता है।
- (य) और (सुहुमेण कायजोगेण) सूक्ष्मकाययोग द्वारा (सुहुमजचउक्कं) चारों सूक्ष्म योगों को (कमसो रुंभदि) क्रम से नष्ट करता है ॥629॥

योग-निरोध

मन, वचन, काय की चेष्टा से उत्पन्न कर्मों को ग्रहण करने में कारणभूत शक्तिस्वरूप जीवप्रदेशों के परिस्पंद को योग कहते हैं ।

निरोध याने नाश करना ।

योगों में जो परिस्पंद है, उसका संपूर्णतया नाश करना – योगनिरोध कहलाता है ।

योग मन, वचन, काय के भेद से तीन प्रकार का है ।

इनमें से प्रत्येक के बादर और सूक्ष्म दो प्रकार हैं ।

योगनिरोध करने के पूर्व तक सर्वत्र बादर योग होता है । योग-निरोध क्रिया संपन्न करते हुए सूक्ष्म योग होता है । तदनंतर योग का निरोध होता है ।

योग-निरोध प्रक्रिया

केवली भगवान बादर काययोग में प्रवृत्त होकर –

सर्वप्रथम बादर मनोयोग को नष्ट कर सूक्ष्मरूप करते हैं ।

इसके पश्चात् बादर वचनयोग को नष्ट कर सूक्ष्मरूप करते हैं ।

इसके पश्चात् बादर उच्छ्वास को नष्ट कर सूक्ष्मरूप करते हैं ।

इसके पश्चात् बादर काययोग को नष्ट कर सूक्ष्मरूप करते हैं ।

सूक्ष्मरूप करने का तात्पर्य है – जो इनकी बादररूप शक्ति होती है, वह घात करके सूक्ष्मरूप करी । अब उन प्रदेशों में बादर रूप से परिस्पंद करने की शक्ति नहीं रही । जैसे लोभ कषाय की शक्ति को बादर से सूक्ष्मरूप किया था, वैसे यहाँ योगों की शक्ति को बादर से सूक्ष्मरूप किया जाता है ।

सूक्ष्म योगों का नाश

इसके पश्चात् केवली भगवान सूक्ष्मकाययोगरूप से प्रवर्तित होकर सूक्ष्म मनोयोग का नाश करते हैं ।

इसके पश्चात् क्रमशः सूक्ष्म वचनयोग, सूक्ष्म उच्छ्वास और अंत में सूक्ष्म काययोग को नष्ट करते हैं ।

तब योगनिरोध संपन्न होता है ।

प्रश्न- विद्यमान वस्तु का नाश होता है । जब एक समय में एक योग ही होता है और यहाँ काययोग है, तो अविद्यमान अन्य योगों का नाश कैसे संभव है ?

उत्तर- वर्तमान में व्यक्तरूप काययोग ही है । परंतु मन, वचन वर्गणाओं में मनोयोग और वचनयोग उत्पन्न करने की जो शक्ति होती है, उसे नष्ट करते हैं ।

पहले उनकी बादर योग उत्पन्न करने की शक्ति को नष्ट करके सूक्ष्मयोग करने रूप शक्ति को करते हैं ।

अनंतर सूक्ष्म शक्ति को भी नष्ट करके योग उत्पन्न करने की शक्ति को समाप्त करते हैं ।

यहाँ कारण में कार्य का उपचार करके वर्गणा की शक्ति को योग कहा है ।

सण्णिविसुहुमणि पुण्णे, जहण्णमणवयणकायजोगादो ।
कुणदि असंखगुणूणं, सुहुमणिपुण्णवरदो वि उस्सासं ॥630॥

- अन्वयार्थ: (सण्णिविसुहुमणि पुण्णे) संज्ञी पर्याप्त, द्वीन्द्रिय पर्याप्त, सूक्ष्म निगोद पर्याप्त इनके क्रमशः (जहण्णमणवयणकायजोगादो) जघन्य मनोयोग, वचनयोग और काययोग से (असंखगुणूणं) असंख्यातगुणित हीन मन, वचन काययोग (कुणदि) करता है।
- (सुहुमणिपुण्णवरदो) सूक्ष्म निगोद पर्याप्त के जघन्य उच्छ्वास से भी असंख्यातगुणा हीन (उस्सासं) उच्छ्वास करता है ॥630॥

www.JainKosh.org

योग	सूक्ष्म-योग
मन योग	संज्ञी पर्याप्त के जघन्य मनोयोग से असंख्यात गुणाहीन
वचन योग	द्वीन्द्रिय पर्याप्त के जघन्य वचनयोग से असंख्यात गुणाहीन
उच्छ्वास	सूक्ष्म निगोद पर्याप्तक के जघन्य उच्छ्वास से असंख्यात गुणाहीन
काय	सूक्ष्म निगोद पर्याप्तक के जघन्य काययोग से असंख्यात गुणाहीन

एक्केक्कस्स णिठंभणकालो अंतोमुहुत्तमेत्तो हु ।
सुहुमं देहणिमाणमाणं हियमाणि करणाणि ॥631॥

- अन्वयार्थ: एक-एक बादर और सूक्ष्म मनोयोगादिकों का (णिठंभणकालो) निरोध करने का काल (अंतोमुहुत्तमेत्तो) अंतर्मुहूर्तमात्र है।
- (सुहुमं देहणिमाणं) सूक्ष्म काययोग में रहकर (आणं) सूक्ष्म उच्छ्वास को (हीयमाणि करणाणि) नष्ट करते हैं ॥631॥

योगनिरोध का काल

एक-एक बादर और सूक्ष्म मनोयोग आदिक के निरोध करने का काल अंतर्मुहूर्त है ।

सबका काल मिलकर भी अंतर्मुहूर्त है ।

सूक्ष्म काययोग में रहता हुआ सूक्ष्म उच्छ्वास को नष्ट करके सूक्ष्म काययोग का नाश करने में प्रवृत्त होता है ।

सुहुमस्स य पढमादो, मुहुत्तअंतो त्ति कुणदि हु अपुव्वे ।
पुव्वगफड्डगहेट्ठा, सेढिस्स असंखभागमिदो ॥632॥

- अन्वयार्थ: (सुहुमस्स य पढमादो) सूक्ष्म काययोग के प्रथम समय से (मुहुत्तअंतो त्ति) अंतर्मुहूर्त काल तक (पुव्वगफड्डगहेट्ठा) पूर्व स्पर्धकों के नीचे (सेढिस्स असंखभागमिदो) जगत्श्रेणि के असंख्यातवें भागमात्र (अपुव्वे) अपूर्व स्पर्धक (कुणदि हु) करते हैं ॥632॥

योगों में अपूर्व स्पर्धककरण

सूक्ष्म काययोग से परिणमते हैं याने सूक्ष्म निगोद पर्याप्तक के जघन्य काययोग से असंख्यात गुणाहीन रूप शक्ति से परिणमन करते हैं ।

यहाँ पर जो योग की शक्ति है, वह पूर्वस्पर्धकरूप से है ।

अब उससे भी असंख्यात गुणाहीन करके योगों की शक्ति को अपूर्व स्पर्धकरूप करते हैं । इस क्रिया को अपूर्वस्पर्धककरण कहते हैं ।

प्रत्येक योगस्थान में वर्ग, वर्गणा, स्पर्धक, गुणहानि की रचना आत्मप्रदेशों में होती है । यह वर्णन कर्मकांडजी में प्रदेश-बंध वर्णन में विस्तार से किया है । वहाँ से देखना ।

योगों में अपूर्व स्पर्धक करण

वे अपूर्व स्पर्धक जघन्य योगस्थान संबंधी जघन्य स्पर्धक के नीचे असंख्यात गुणाहीन अविभाग-प्रतिच्छेद युक्त होते हैं । प्रथम समय किये जाने वाले अपूर्व स्पर्धकों की संख्या $\frac{\text{श्रेणि}}{\text{असंख्यात}}$ है ।

इसकी संदृष्टि $\frac{९}{\text{ओ}\,\partial}$ है । याने योगस्थान संबंधी एक गुणहानि के भी असंख्यातवें भाग प्रमाण अपूर्व स्पर्धक बनाता है ।

ध्यान रहे यह सारा कार्य आत्म-प्रदेशों में योग शक्ति को क्षीण करने का हो रहा है । अपूर्वस्पर्धककरण, सूक्ष्मकृष्टिकरण – ये कार्य आत्म-प्रदेशों में किये जा रहे हैं, किसी पौद्गलिक वर्गणा में नहीं ।

यह सब अबुद्धिपूर्वक स्वत: होने वाले कार्य हैं ।

पुव्वादिवग्गणाणं, जीवपदेसाविभागपिंडादो ।
होदि असंखं भागं, अपुव्वपढमम्हि ताण दुगं ॥633॥

- अन्वयार्थ: (पुव्वादिवग्गणाणं जीवपदेसाविभागपिंडादो) पूर्व स्पर्धकों के जीवप्रदेशों के समूह से और आदिवर्गणा के अविभागप्रतिच्छेदों के समूह से (अपुव्वपढमम्हि) अपूर्वस्पर्धक करने के प्रथम समय में (ताण दुगं) अपूर्वस्पर्धकों के जीवप्रदेश और अविभागप्रतिच्छेद (असंखं भागं) असंख्यातवें भागप्रमाण (होदि) हैं ॥633॥

www.JainKosh.org

अपूर्व स्पर्धकों में जीवप्रदेश

पूर्व स्पर्धकों में सर्व प्रदेश लोकप्रमाण असंख्यात हैं । वर्गणा के रूप में देखने पर (प्रथम वर्गणा $\times \frac{3}{2}$ गुणहानि+) प्रमाण हैं ।

इन प्रदेशों को अपकर्षण भागहार का भाग देकर एकभाग मात्र प्रदेशों को अपूर्व स्पर्धकरूप करता है । $\frac{\text{व १२+}}{\text{ओ}}$

पूर्व स्पर्धक की आदि वर्गणा में जितने अविभाग-प्रतिच्छेद हैं, उसे पल्य/असंख्यात का भाग देकर एकभाग प्रमाण शक्ति अपूर्व स्पर्धक की अंतिम वर्गणा की शक्ति होती है । $\frac{\text{व}}{\partial}$

इसे अपूर्व स्पर्धकों की संख्या से भाग देने पर जघन्य अपूर्व-स्पर्धक के जघन्य वर्ग की शक्ति आती है । $\frac{\text{व}}{\partial \,|\, \frac{\text{९}}{\text{ओ}\,\partial}}$

प्रथम समय में अपूर्व स्पर्धक रचना

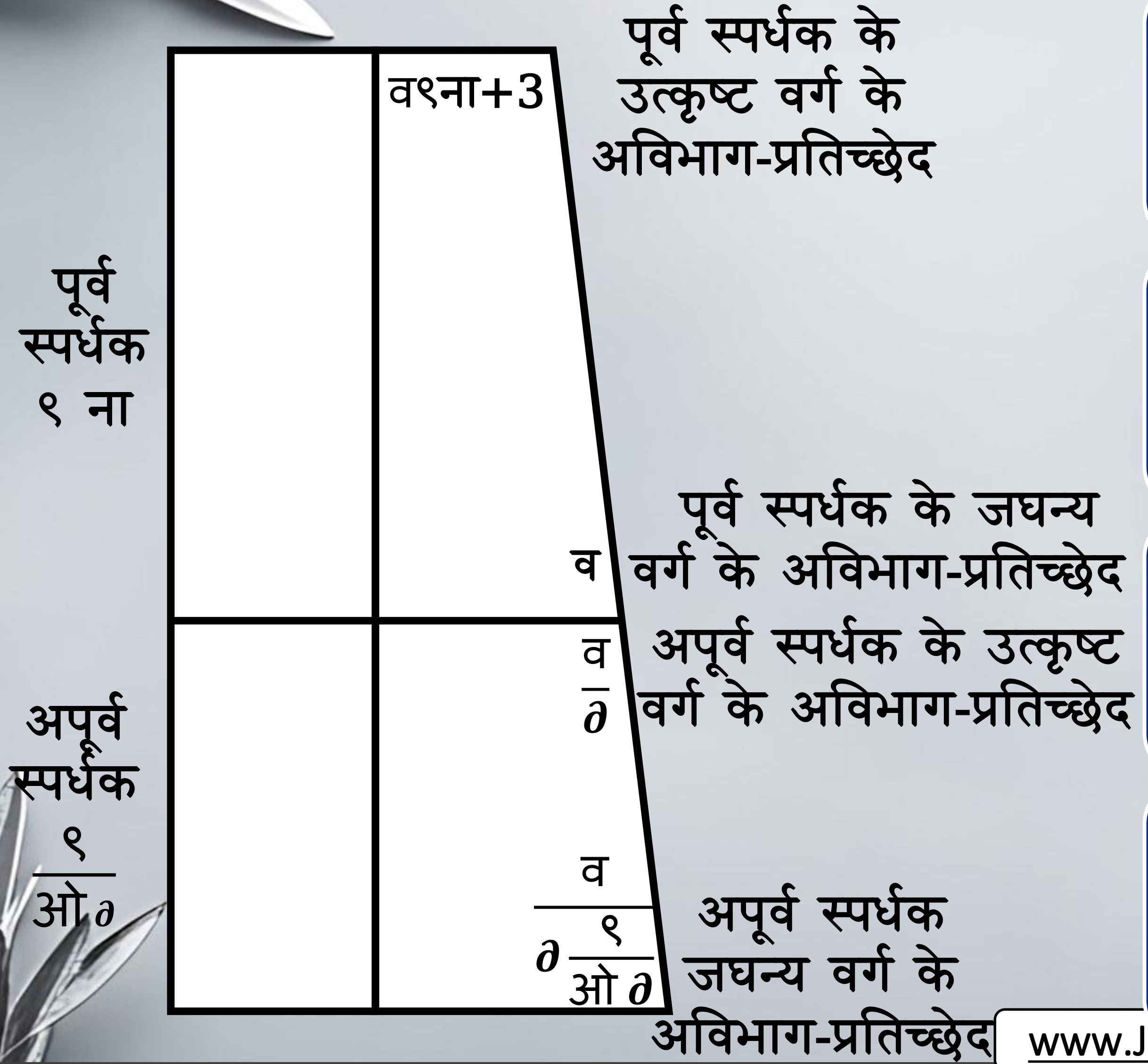

इन प्रदेशों में से जघन्य अपूर्व स्पर्धक की प्रथम वर्गणा में सर्वाधिक प्रदेश देता है ।

द्वितीयादि वर्गणा से अंतिम स्पर्धक की अंतिम वर्गणा तक चयहीन क्रम से प्रदेश देता है ।

अपूर्व स्पर्धक की अंतिम वर्गणा से पूर्व स्पर्धकों की प्रथम वर्गणा में असंख्यात गुणाहीन प्रदेश देता है ।

इसके ऊपर की वर्गणाओं में चयहीन क्रम से प्रदेश देता है ।

प्रदेश देने का तात्पर्य है उन आत्म-प्रदेशों को ऐसी शक्तिरूप परिणमाता है ।

www.JainKosh.org

ओक्कट्टदि पडिसमयं, जीवपदेसे असंखगुणियकमे ।
कुणदि अपुव्वफड्डयं, तग्गुणहीणक्कमेणेव ॥634॥

- अन्वयार्थ: (पडिसमयं) प्रत्येक समय में (असंखगुणियकमे) असंख्यातगुणित क्रम से (जीवपदेसे) जीवप्रदेशों का (ओक्कट्टदि) अपकर्षण करता है और
- (तग्गुणहीणक्कमेणेव) असंख्यातगुणित घटते क्रम से (अपुव्वफड्डयं) अपूर्व स्पर्धकों को (कुणदि) करता है ॥634॥

अपूर्व-स्पर्धक करण में प्रत्येक समय

अपूर्व-स्पर्धक करण के प्रत्येक समय में नवीन अपूर्व स्पर्धक रचता है । विशेषता यह है–

1) पूर्व समय के अपूर्व स्पर्धकों से तात्कालिक अपूर्व स्पर्धक असंख्यात गुणाहीन बनाता है ।

$$\frac{\text{पूर्व समयकृत अपूर्व स्पर्धक}}{\partial} = \text{तात्कालिक समय में नवीन अपूर्व स्पर्धक}$$

2) पूर्व समय के अपकर्षित प्रदेश से तात्कालिक अपकर्षित प्रदेश असंख्यात गुणा ग्रहण करता है ।

3) द्वितीयादि समयों में पूर्व-अपूर्व – दोनों स्पर्धकों में से प्रदेश का अपकर्षण कर नवीन अपूर्व स्पर्धकों की रचना होती है ।

इस प्रकार यह सब प्रक्रिया अपूर्व-स्पर्धककरण के अंतिम समय तक जानना चाहिए ।

प्रदेशों का देय और दृश्य क्रम

नवीन अपूर्व स्पर्धक की प्रथम वर्गणा में सर्वाधिक प्रदेश देता है ।

इसके ऊपर अंतिम वर्गणा तक चयहीन क्रम से प्रदेश देता है ।

इसके ऊपर पुराने अपूर्वस्पर्धक की प्रथम वर्गणा में असंख्यात गुणे हीन प्रदेश देता है ।

इसके ऊपर पूर्व स्पर्धक की अंतिम वर्गणा तक चयहीन क्रम से प्रदेश देता है ।

दृश्यमान प्रदेश; सर्व पूर्व-अपूर्व स्पर्धकों में चयहीन क्रम से होते हैं ।

सेढिपदस्स असंखं, भागं पुव्वाण फड्डयाणं वा ।
सव्वे होंति अपुव्वा हु, फड्डया जोगपडिबद्धा ॥635॥

- अन्वयार्थ: (जोगपडिबद्धा) योगसंबंधी (सव्वे अपुव्वा फड्डया) सर्व अपूर्व स्पर्धक (सेढिपदस्स असंखं भागं) जगत्श्रेणी के प्रथम वर्गमूल के असंख्यातवें भाग मात्र हैं।
- (वा) अथवा (पुव्वाण फड्डयाणं असंखं भागं) सर्व पूर्वस्पर्धकों के असंख्यातवें भागप्रमाण है ॥635॥

सर्व अपूर्व स्पर्धक

योग संबंधी सर्व अपूर्व स्पर्धक $= \sqrt{\dfrac{\text{श्रेणि}}{\text{असंख्यात}}}$ अथवा $\dfrac{\text{पूर्व स्पर्धक}}{\text{असंख्यात}}$ अथवा $\dfrac{\text{एक गुणहानि}}{\text{असंख्यात}}$

अपूर्वस्पर्धककरण अंतर्मुहूर्त काल तक चलता है ।

इस दौरान स्थितिकांडकघात, अनुभागकांडकघात और गुणश्रेणि पूर्ववत् प्रवृत्त हो रही है ।

अपूर्व स्पर्धककरण की समाप्ति पर जीव प्रदेश

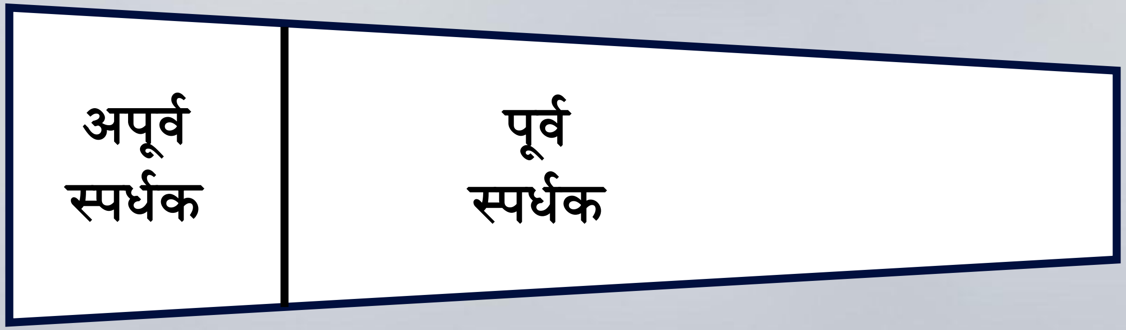

www.JainKosh.org

एत्तो करेदि किट्टिं, मुहुत्तअंतो त्ति ते अपुव्वाणं ।
हेट्ठादु फड्डयाणं, सेढिस्स असंखभागमिदं ॥636॥

- अन्वयार्थ: (एत्तो) इसके अनन्तर (मुहुत्तअंतो त्ति) अन्तर्मुहूर्तकाल तक (अपुव्वाणं फड्डयाणं हेट्ठा) अपूर्व स्पर्धकों के नीचे (किट्टिं) कृष्टि (करेदि) करता है।
- (ते सेढिस्स असंखभागमिदं) वे कृष्टियाँ जगत्श्रेणि के असंख्यातवें भागमात्र हैं ॥636॥

योगों में सूक्ष्मकृष्टिकरण

जिस प्रकार पहले कषाय में पूर्व-अपूर्व स्पर्धककरण के पश्चात् कृष्टिकरण करके अनुभाग को नष्ट किया था, उसी प्रकार यहाँ जीवप्रदेशों में योग शक्ति के अपूर्वस्पर्धककरण के पश्चात् सूक्ष्मकृष्टि की जाती है ।

स्पर्धकों में शक्ति एक से दूसरे में विशेष अधिक होती है पर कृष्टियों में एक कृष्टि से दूसरी कृष्टि में असंख्यात गुणा अधिक शक्ति होती है ।

$$\text{यहाँ की जाने वाली सूक्ष्म कृष्टियों की संख्या} = \frac{\text{एक स्पर्धक की वर्गणा शलाका}}{\text{असंख्यात}}$$

यह $\frac{\text{श्रेणी}}{\text{असंख्यात}}$ प्रमाण है । इसकी संदृष्टि = $\frac{४}{\partial}$;

अपुव्वादिवग्गणाणं, जीवपदेसाविभागपिंडादो।
होंति असंखं भागं, किट्टीपढमम्हि ताण दुगं ॥637॥

- अन्वयार्थ: (अपुव्वादिवग्गणाणं जीवपदेसाविभागपिंडादो) अपूर्वस्पर्धक संबंधी सर्व जीवप्रदेशों और अपूर्व स्पर्धक की आदिवर्गणा के अविभागप्रतिच्छेद समूह के (असंखं भागं) असंख्यातवें भागमात्र (किट्टीपढमम्हि) कृष्टिकरण के प्रथम समय में (ताणदुगं) कृष्टियों के प्रदेश और अविभागप्रतिच्छेद (होंति) होते हैं ॥637॥

प्रथम समय कृत कृष्टियाँ

$\frac{\text{सर्व जीव प्रदेश}}{\text{असंख्यात}}$ = प्रथम समय कृत कृष्टियों हेतु अपकृष्ट प्रदेश । यह सर्व अपूर्व स्पर्धकों के प्रदेशों का भी असंख्यातवां भाग ही है । संदृष्टि: $\frac{\text{व १२}}{\text{ओ}}$

अपूर्व स्पर्धक की आदि वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेद के असंख्यातवे भाग प्रमाण अविभागप्रतिच्छेद; कृष्टि के एक प्रदेश में होते हैं ।

अपकृष्ट किये प्रदेश में से जघन्य कृष्टि में सर्वाधिक प्रदेश देता है । याने इतने आत्म-प्रदेश जघन्य कृष्टिरूप से परिणमते हैं ।

द्वितीय से अंतिम कृष्टि तक चयहीन क्रम से प्रदेश देता है ।

अंतिम कृष्टि से अपूर्व स्पर्धक की प्रथम वर्गणा में असंख्यात गुणाहीन प्रदेश देता है ।

उसके ऊपर पूर्व स्पर्धक की अंतिम वर्गणा तक विशेषहीन क्रम से प्रदेश देता है ।

ओक्कट्टदि पडिसमयं, जीवपदेसे असंखगुणियकमे ।
तग्गुणहीणकमेण य, करेदि किट्टिं तु पडिसमए ॥638॥

- अन्वयार्थ: (पडिसमयं) प्रत्येक समय में (असंखगुणियकमे) असंख्यात गुणित क्रम से (जीवपदेसे) जीवप्रदेशों का (ओक्कट्टदि) अपकर्षण करता है (य) और
- (पडिसमए) प्रत्येक समय में (तग्गुणहीणकमेण) असंख्यातगुणित हीन क्रम से (किट्टिं तु) नवीन कृष्टियाँ (करेदि) करता है ॥638॥

द्वितीयादि समयों में प्रदेश, कृष्टि

द्वितीयादि समयों में प्रत्येक समय असंख्यात गुणे जीवप्रदेशों का अपकर्षण करता है। $\frac{\text{व १२}}{\text{ओ} / \partial}$

प्रत्येक समय नवीन सूक्ष्म कृष्टियों का प्रमाण असंख्यात गुणाहीन होता है। $\frac{\text{४}}{\partial\, \text{ओ}\, \partial}$

भिन्न-भिन्न समयों में कृत सूक्ष्म कृष्टियाँ

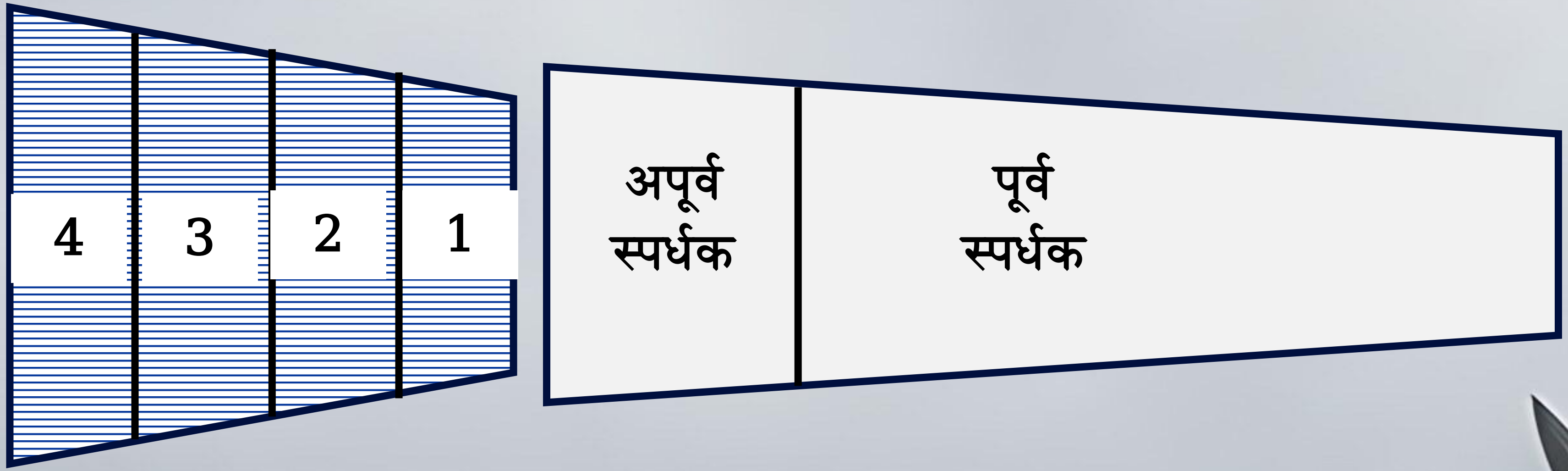

प्रदेश देने का विधान

नवीन सूक्ष्म कृष्टि; पूर्व कृष्टियों के नीचे रची जाती है ।

नवीन सूक्ष्मकृष्टियों की प्रथम कृष्टि में सर्वाधिक प्रदेश देता है ।

उसके ऊपर द्वितीय से अंतिम नवीन कृष्टि तक चयहीन क्रम से प्रदेश देता है ।

उससे पूर्व कृष्टियों की प्रथम कृष्टि में असंख्यात गुणाहीन प्रदेश देता है ।

इससे ऊपर अंतिम पूर्व कृष्टि तक चयहीन क्रम से प्रदेश देता है ।

अंतिम पूर्व कृष्टि से ऊपर अपूर्व स्पर्धक की आदि वर्गणा में असंख्यात गुणाहीन प्रदेश देता है ।

ऊपर विशेषहीन क्रम से प्रदेश देता है ।

यहाँ गोपुच्छ करने के लिये अधस्तन शीर्ष विशेष आदि विभाग सूक्ष्म कृष्टि के समान जानना चाहिए ।

सेढिपदस्स असंखं, भागमपुव्वाणं फड्डयाणं व ।
सव्वाओ किट्टीओ, पल्लस्स असंखभागगुणिदकमा ॥639॥

- अन्वयार्थ: (सव्वाओ किट्टीओ) सर्व कृष्टियों का प्रमाण (सेढिपदस्स असंखं भागं) जगत्श्रेणि के प्रथम वर्गमूल का असंख्यातवाँ भाग (वा) अथवा (अपुव्वाणं फड्डयाणं असंखं भागं) अपूर्वस्पर्धकों के प्रमाण का असंख्यातवाँ भाग है।
- सर्व कृष्टियाँ (पल्लस्स असंखभागगुणिदकमा) क्रम से पल्य के असंख्यातवें भाग से गुणित हैं ॥639॥

www.JainKosh.org

सूक्ष्म कृष्टियों का प्रमाण

इस प्रकार अंतर्मुहूर्त प्रमाण काल तक सूक्ष्मकृष्टियाँ की जाती हैं ।

वहाँ सर्व सूक्ष्मकृष्टियों का प्रमाण $\frac{\text{श्रेणि}}{\text{असंख्यात}}$ अथवा $\frac{\text{अपूर्व स्पर्धक}}{\text{असंख्यात}}$ है ।

यहाँ कृष्टियों की शक्ति का गुणकार पल्य/असंख्यात है । याने एक कृष्टि से दूसरी कृष्टि की शक्ति पल्य/असंख्यात गुणी है ।

अंतिम कृष्टि से अपूर्व स्पर्धक की आदि वर्गणा में पल्य/असंख्यात गुणा शक्ति है ।

इसके ऊपर द्वितीयादि वर्गणा में एक-एक अधिक अविभागप्रतिच्छेद होते हैं ।

सूक्ष्म कृष्टियों के प्रदेश

जघन्य कृष्टि में (असंख्यात × जगतप्रतर) प्रमाण प्रदेश हैं ।

इसके ऊपर अंतिम कृष्टि तक चयहीन (श्रेणि/असंख्यात) प्रदेश हैं ।

अंतिम कृष्टि के प्रदेश से अपूर्वस्पर्धक की आदि वर्गणा में असंख्यात गुणाहीन प्रदेश हैं ।

(1 कृष्टि x जीव प्रदेश) करने पर
प्रत्येक में शक्ति पल्य/असं. गुणा है ।

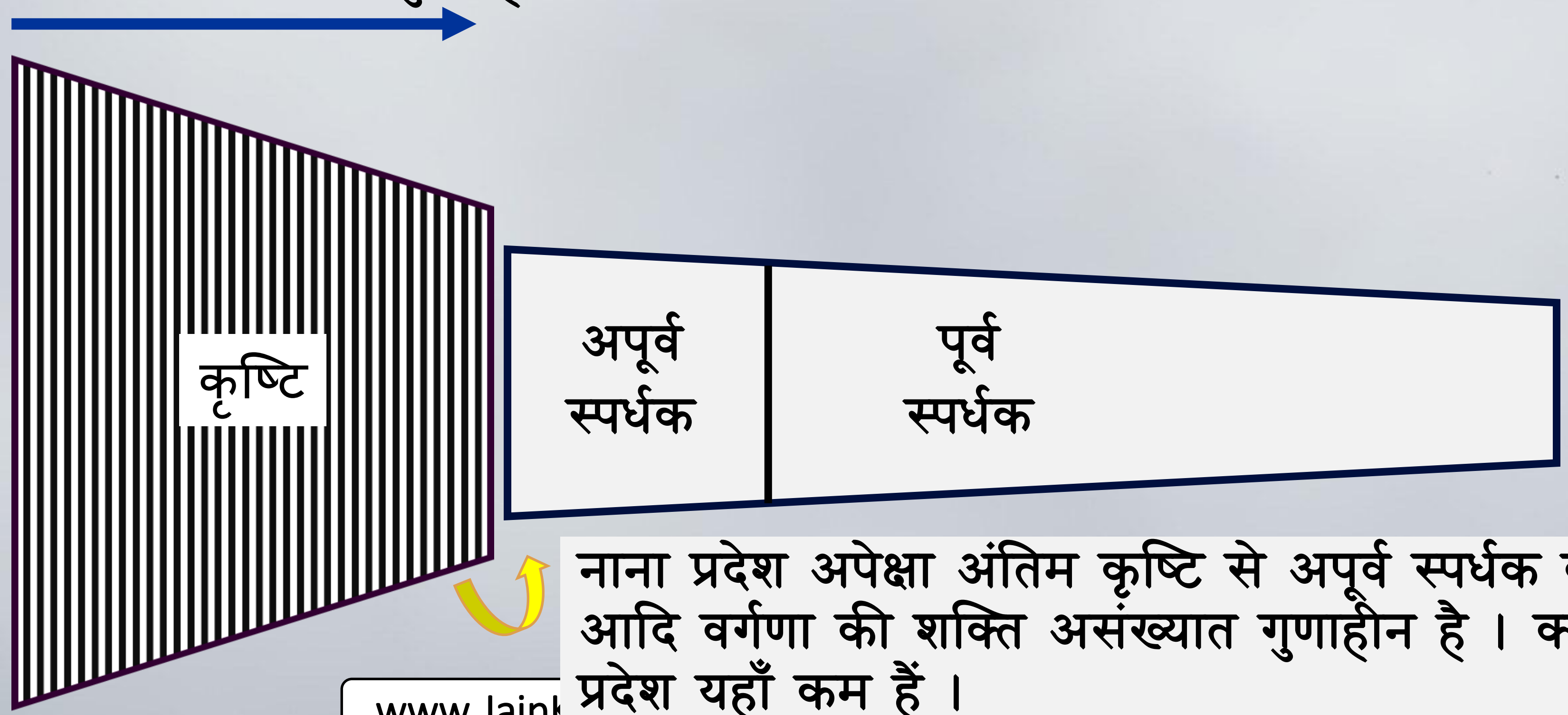

नाना प्रदेश अपेक्षा अंतिम कृष्टि से अपूर्व स्पर्धक की आदि वर्गणा की शक्ति असंख्यात गुणाहीन है । क्योंकि प्रदेश यहाँ कम हैं ।

www.Jaink

एत्थापुव्वविहाणं, अपुव्वफड्डयविहिं व संजलणे ।
बादरकिट्टिविहिं वा, करणं सुहुमाण किट्टीणं ॥640॥

- अन्वयार्थ: (एत्थापुव्वविहाणं) यहाँ अपूर्वस्पर्धक करने का विधान (संजलणे) संज्वलन कषाय के (अपुव्वफड्डयविहीं व) अपूर्वस्पर्धक करने के विधान समान जानना।
- (सुहुमाण किट्टीणं) सूक्ष्मकृष्टि (करणं) करने का विधान (बादर किट्टिविहिं वा) संज्वलन कषाय की बादरकृष्टियों के विधान के समान जानना ॥640॥

कषायवत् रचना

जैसे पूर्व में अनिवृत्तिकरण में संज्वलन कषाय के अपूर्व स्पर्धक करने का विधान कहा है, वैसा ही यहाँ योग के अपूर्व स्पर्धक का विधान जानना ।

जैसा संज्वलन कषाय का बादर कृष्टिकरण का विधान कहा है, वैसा योग का सूक्ष्मकृष्टि करण विधान जानना ।

वहाँ कर्म परमाणुओं में अनुभाग शक्ति की अपेक्षा से वर्णन है । यहाँ जीव प्रदेशों में योगशक्ति अपेक्षा से वर्णन है ।

योगों के अपूर्वस्पर्धक करण और कृष्टिकरण में इतनी विशेषता है कि जिस समय अपूर्व स्पर्धक अथवा कृष्टि बनायी जाती हैं, उस ही समय उसका प्रयोग भी हो जाता है । क्योंकि यहाँ कोई द्वितीय स्थिति अथवा आबाधा आदि नहीं है । यह तो जीव के प्रदेश हैं जिनमें स्पर्धक और कृष्टि रूप परिणमन हुआ है ।

किट्टीकरणे चरमे, से काले उभयफड्डये सव्वे ।
णासेइ मुहुत्तं तु, किट्टीगदवेदगो जोगी ॥641॥

- अन्वयार्थ: (किट्टीकरणे चरमे से काले) कृष्टिकरण काल के चरम समय के अनन्तर काल में (सव्वे उभयफड्डये) सर्व पूर्व-अपूर्व स्पर्धक (णासेइ) नष्ट करता है।
- (मुहुत्तं तु) अन्तर्मुहूर्त काल तक (जोगी) सयोगी (किट्टीगदवेदगो) कृष्टिगतयोग का अनुभव करता है ॥641॥

कृष्टि करण की समाप्ति

अंतर्मुहूर्त काल तक कृष्टिकरण करता है ।

कृष्टिकरण के अंतिम समय तक पूर्व-अपूर्व स्पर्धक भी रहते हैं ।

अंतिम समय में सारे पूर्व-अपूर्व स्पर्धकों का युगपत् नाश करता है ।

अनंतर समय में सर्व पूर्व-अपूर्व स्पर्धकरूप प्रदेश अपने स्वरूप का त्यागकर कृष्टिरूप परिणमते हैं ।

इस समय से सयोगकेवली कृष्टिरूप योग का अनुभव करते हैं । यह सूक्ष्मकृष्टिवेदक काल कहलाता है । योगों में जो सर्व प्रदेशों में सूक्ष्मकृष्टि हुई, वह संपूर्णतया प्रगट होती है ।

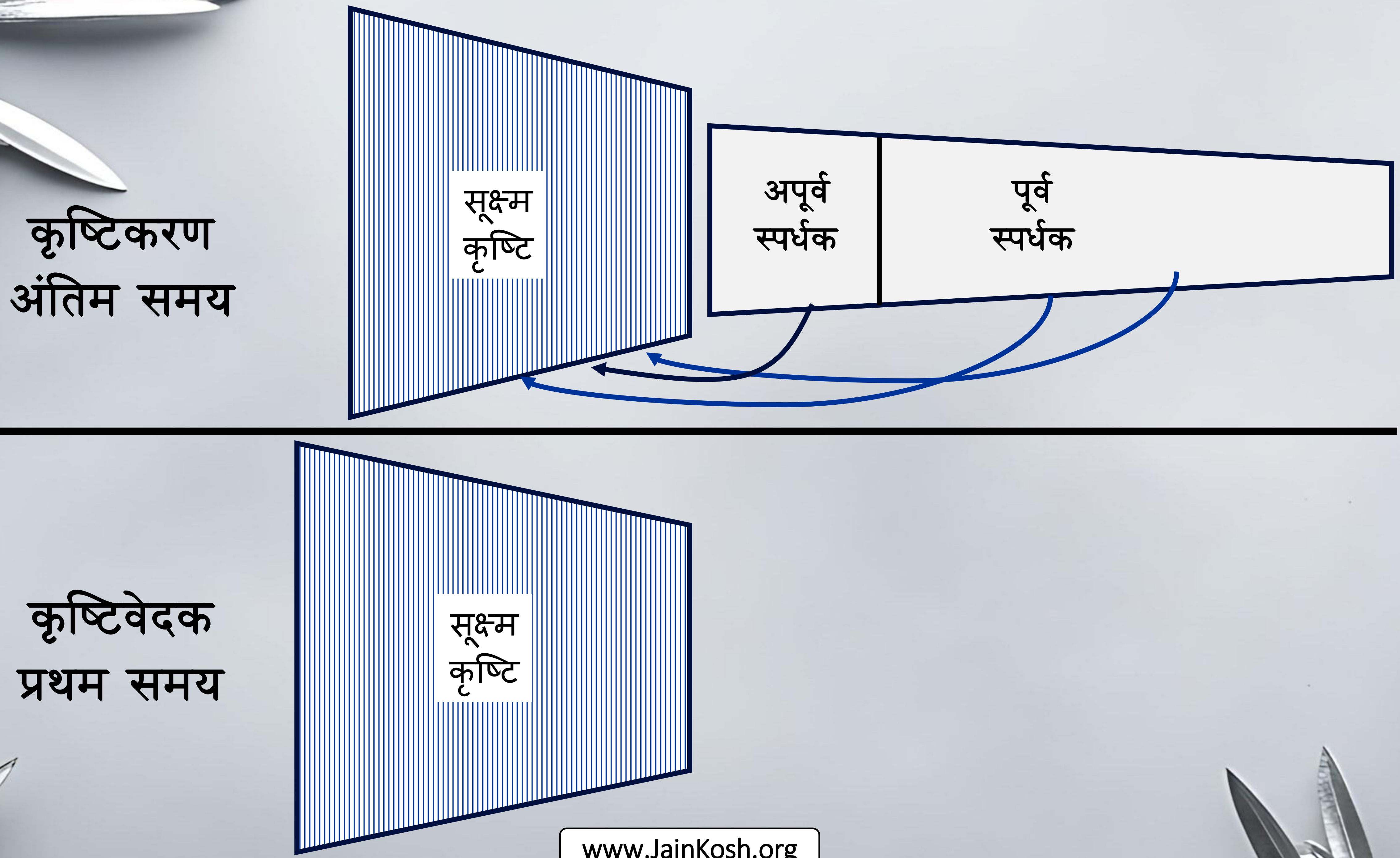

www.JainKosh.org

पढमे असंखभागं, हेट्ठुवरिं णासिदूण बिदियादी ।
हेट्ठुवरिमसंखगुणं, कमेण किट्टीं विणासेदि ॥642॥

- अन्वयार्थ: (पढमे) प्रथम समय में (हेट्ठुवरिं) अधस्तन और उपरिम (असंखभागं) असंख्यातवें भागमात्र कृष्टियों का (णासिदूण) नाश करके
- (बिदियादी) द्वितीयादि समयों में (कमेण) क्रम से (हेट्ठुवरिमसंखगुणं) अधस्तन और उपरिम असंख्यातगुणी (किट्टीं) कृष्टियों का (विणासेदि) विनाश करता है ॥642॥

www.JainKosh.org

कृष्टियों का नाश

प्रथम समय में अधस्तन (अल्प शक्ति वाली) और उपरिम (अधिक शक्ति वाली) कृष्टियों को मध्य की कृष्टिरूप परिणमाकर नष्ट करता है ।

कृष्टि का नाश करता है अर्थात् उन प्रदेशों में उस प्रकार की शक्ति को मध्य शक्ति रूप परिणमा देता है ।

इन नष्ट होने वाली कृष्टियों का प्रमाण $\frac{\text{सर्व कृष्टि}}{\text{असंख्यात}}$ है ।

ऐसे द्वितीयादि प्रत्येक समय में असंख्यात गुणी कृष्टियों का नाश करता है ।

मज्झिम बहुभागुदया, किट्टीं पक्खिय विससेहीणकमा । पडिसमयं सत्तीदो, असंखगुणहीणया होंति ॥643॥

- अन्वयार्थ: (मज्झिम बहुभागुदया) मध्य की बहुभागप्रमाण कृष्टियाँ उदयरूप होती हैं।
- (पडिसमयं) प्रत्येक समय में (किट्टीं पक्खिय) कृष्टियों की अपेक्षा से (विसेसहीणकमा) विशेषहीन क्रमसहित कृष्टियाँ उदयरूप जानना चाहिए और (सत्तीदो) शक्ति की अपेक्षा (असंखगुणहीणया) असंख्यातगुणित हीनक्रम सहित (होंति) होती हैं ॥643॥

उदय कृष्टि

शेष मध्य की बहुभाग प्रमाण कृष्टियाँ उदयरूप होती हैं ।

प्रत्येक समय में उदित होने वाली कृष्टियाँ विशेष हीन होती हैं । याने कृष्टियों की संख्या घटती जाती है ।

प्रत्येक समय में असंख्यात गुणाहीन योग का वेदन होता है । क्योंकि प्रत्येक समय में असंख्यात गुणा अधस्तन, उपरिम कृष्टियों का नाश होता है ।

पूर्व समय में वेदित कृष्टियों में से अधस्तन और उपरिम असंख्यात भाग कृष्टियों को अनंतर समय में नष्ट करता है ।

उदय कृष्टि

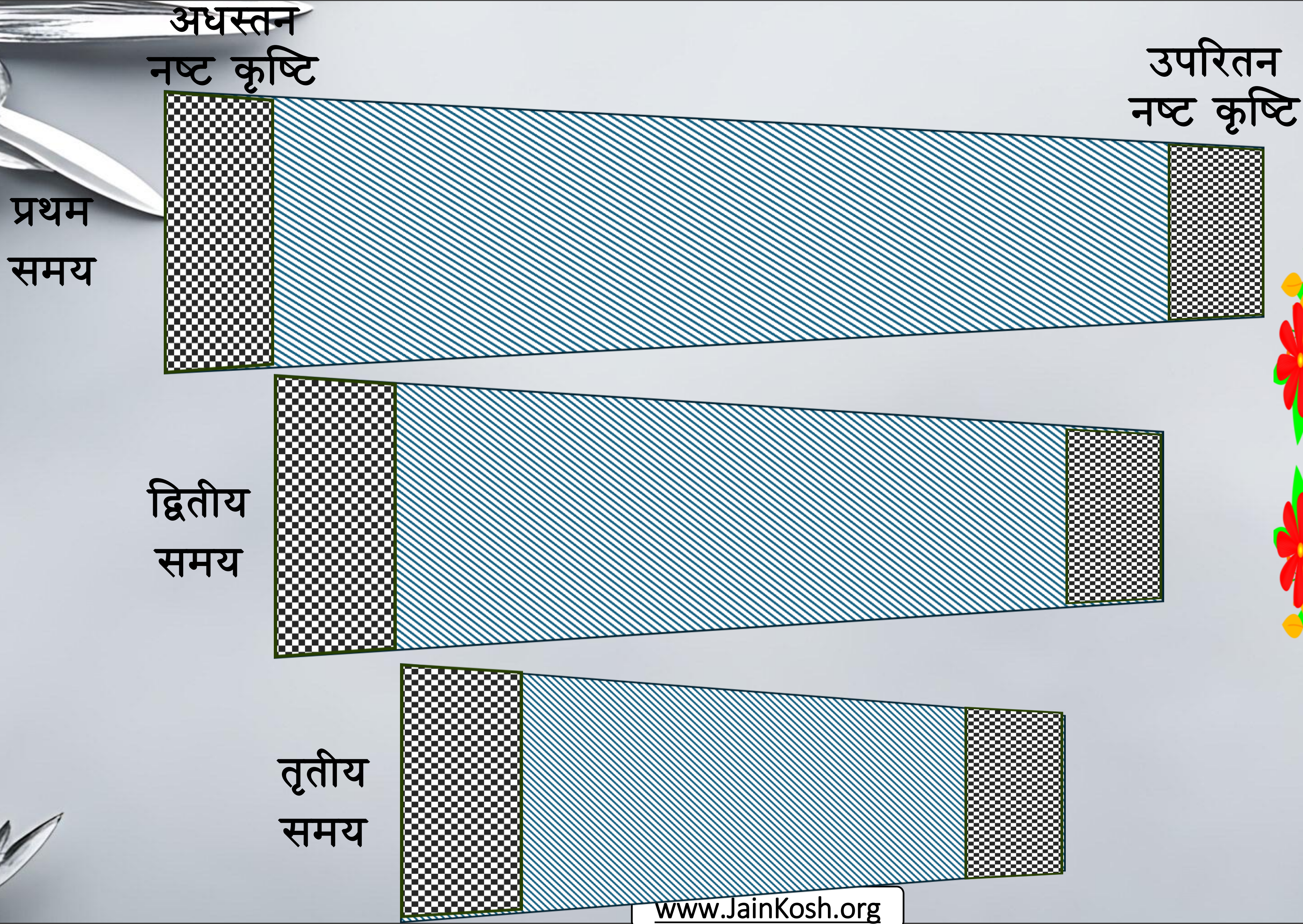

किट्टिगजोगी झाणं, झायदि तदियं खु सुहुमकिरियं तु । चरिमे असंखभागे, किट्टीणं णासदि सजोगी ॥644॥

- अन्वयार्थ: (किट्टिगजोगी) सूक्ष्मकृष्टि का वेदन करने वाले सयोगिजिन (तदियं खु सुहुमकिरियं) तृतीय सूक्ष्मक्रिया अप्रतिपाति नाम का (झाणं झायदि) शुक्लध्यान ध्याते हैं।
- (सजोगी) सयोगी (चरिमे) अंतिम समय में (किट्टीणं असंखभागे) असंख्यात बहुभाग कृष्टियों का (णासदि) नाश करते हैं ॥644॥

सूक्ष्मक्रिया-अप्रतिपाती शुक्लध्यान

सूक्ष्मकृष्टि वेदक सयोगिजिन तीसरे सूक्ष्मक्रिया-अप्रतिपाती शुक्लध्यान को ध्याते हैं ।

सूक्ष्मक्रिया अर्थात् सूक्ष्मकृष्टि योग जनित सूक्ष्म परिस्पंद यहाँ होता है ।

यह ध्यान प्रतिपात से रहित है याने इस ध्यान से नीचे च्युत नहीं होता; ऊपर ही चढ़ता है । इसलिये इस ध्यान का यह नाम सार्थक है ।

इस ध्यान का फल का योगों का निरोध होता है ।

प्रश्न- संपूर्ण पदार्थों को विषय करने वाले ध्रुव उपयोग से परिणत सयोगकेवली जिन में एकाग्र-चिंता का निरोध लक्षणरूप ध्यान कैसे संभव है?

उत्तर- सयोगिजिन के योग का निरोध होने से आस्रव का निरोधरूप ध्यान का फल देखा जाता है । अत: उसके कारणरूप ध्यान उनके होता है ।

अथवा चिंता (व्यग्रता) का कारण योग है । इसलिये योग को भी उपचार से चिंता कहते हैं । उस चिंता का निरोध लक्षणरूप ध्यान सयोगिजिन के होता है ।

वास्तव में ध्यान सयोगिजिन के ही है, छद्मस्थ के नहीं । क्योंकि संपूर्ण पदार्थों को जानते हुए भी वे केवली अपने एकाग्र चिंतारूप शुद्धात्मा के अनुभव/उपयोग से च्युत नहीं होते हैं ।

इसलिये सयोगकेवली के ध्यान पाया जाता है ।

www.jainkosh.org

कृष्टियों का क्षय

इस प्रकार अंतर्मुहूर्त काल तक मध्य की असंख्यात बहुभाग कृष्टियों का वेदन होता है ।

अंत समय में शेष सर्व कृष्टियों का नाश करता है ।

सर्व कृष्टियों का नाश अर्थात् सर्व जीव-प्रदेशों में योग की शक्ति का अभाव किया ।

जोगिस्स सेसकालं, मोत्तूण अजोगिसव्वकालं च ।
चरिमं खंडं गेण्हदि, सीसेण य उवरिमठिदीओ ॥645॥

- अन्वयार्थ: (जोगिस्स सेसकालं) सयोगी गुणस्थान का शेष काल (च) और (अजोगिसव्वकालं) अयोगी का सर्वकाल (मोत्तूण) छोड़कर शेष सर्व (सीसेण य उवरिमठिदीओ) गुणश्रेणि शीर्षसहित उपरिम स्थितियों को (चरिमं खंडं) अंतिम कांडकरूप से (गेण्हदि) ग्रहण करता है ॥645॥

अंतिम स्थितिकांडक

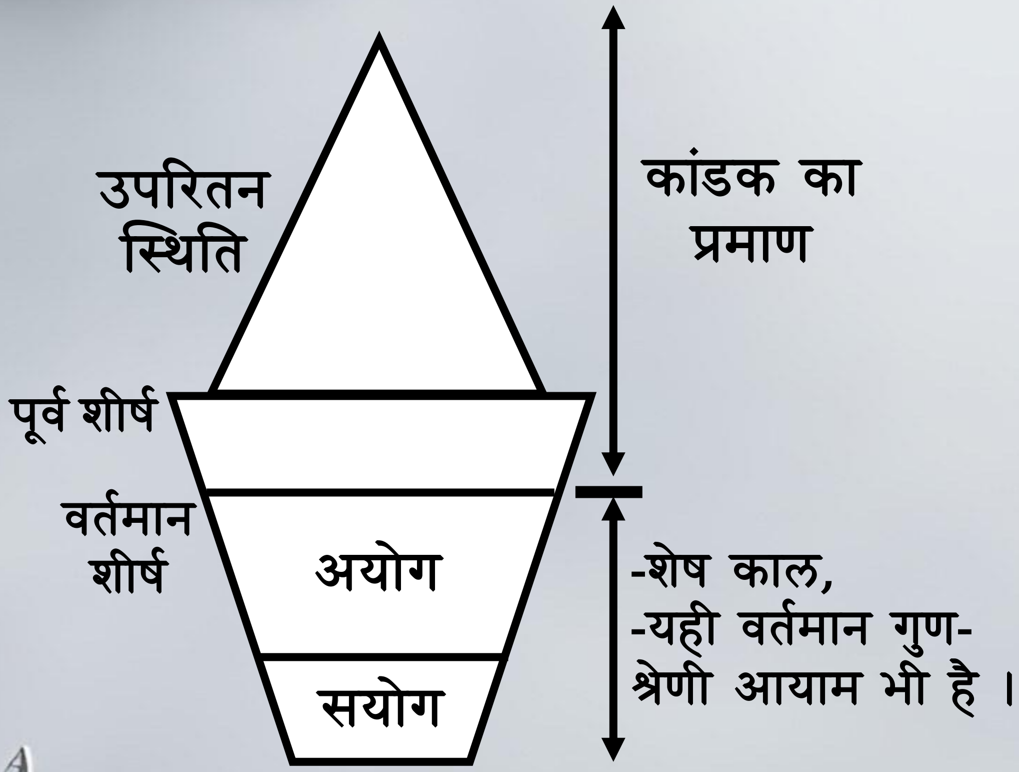

3 अघाति का अंतिम कांडक का प्रमाण

ऐसे सयोगकेवली के अंतिम अंतर्मुहूर्त में हजारों स्थिति, अनुभागकांडक व्यतीत होते हैं । द्विचरम कांडक तक उदयादि अवस्थित गुणश्रेणि होती है ।

अंतिम कांडक को करने पर गुणश्रेणी आयाम बदल जाता है ।

अंतिम कांडक का आयाम सयोगकेवली का शेष रहा काल तथा अयोगकेवली के काल को छोड़कर शेष समस्त अंतर्मुहूर्त प्रमाण उपरितन स्थिति है ।

पूर्व समय का गुणश्रेणी शीर्ष एवं उससे उपरितन स्थिति; कांडक आयाम में नष्ट करने के लिए ग्रहण कर ली जाती है ।

तत्थ गुणसेढिकरणं, दिज्जादिकमो य सम्मखपणं वा । अंतिमफालीपडणं, सजोगगुणठाणचरिमम्हि ॥646॥

- अन्वयार्थ: (तत्थ) वहाँ (गुणसेढिकरणं) गुणश्रेणिकरण (य) और (दिज्जादिकमो) देयद्रव्यादि का क्रम (सम्मखवणं वा) सम्यक्त्व प्रकृति की क्षपणा-विधि समान जानना।
- (सजोग गुणठाणचरिमम्हि) सयोगकेवली गुणस्थान के चरम समय में (अंतिम फालीपडणं) अंतिम फालि का पतन होता है ॥646॥

www.JainKosh.org

अंतिम कांडक में गुणश्रेणि, फाली द्रव्य

अंतिम कांडक में उदयादि गलितावशेष गुणश्रेणि बनायी जाती है ।

इस गुणश्रेणि का आयाम (सयोगकेवली का शेष काल + अयोगकेवली का काल) प्रमाण है ।

गुणश्रेणि और कांडक द्रव्य में से पूर्वोक्त गुणश्रेणि के प्रथम उदयनिषेक में अल्प द्रव्य देते हैं । इसके ऊपर द्वितीयादि निषेकों से गुणश्रेणी शीर्ष तक असंख्यातगुणित क्रम से द्रव्य देते हैं । यह प्रथम पर्व कहलाता है ।

शीर्ष के ऊपर प्रथम निषेक में शीर्ष से असंख्यात गुणा द्रव्य देते हैं । इसके ऊपर पुरातन गुणश्रेणी शीर्ष तक चयहीन क्रम से द्रव्य देते हैं । यह दूसरा पर्व कहलाता है ।

इसके ऊपर के निषेक में असंख्यात गुणाहीन द्रव्य देते हैं । इसके ऊपर चयहीन क्रम से अतिस्थापनावली के पूर्व तक द्रव्य देते हैं । यह तृतीय पर्व कहलाता है ।

इस प्रकार अंतिम कांडक के प्रथम से द्विचरम समय तक द्रव्य दिया जाता है ।

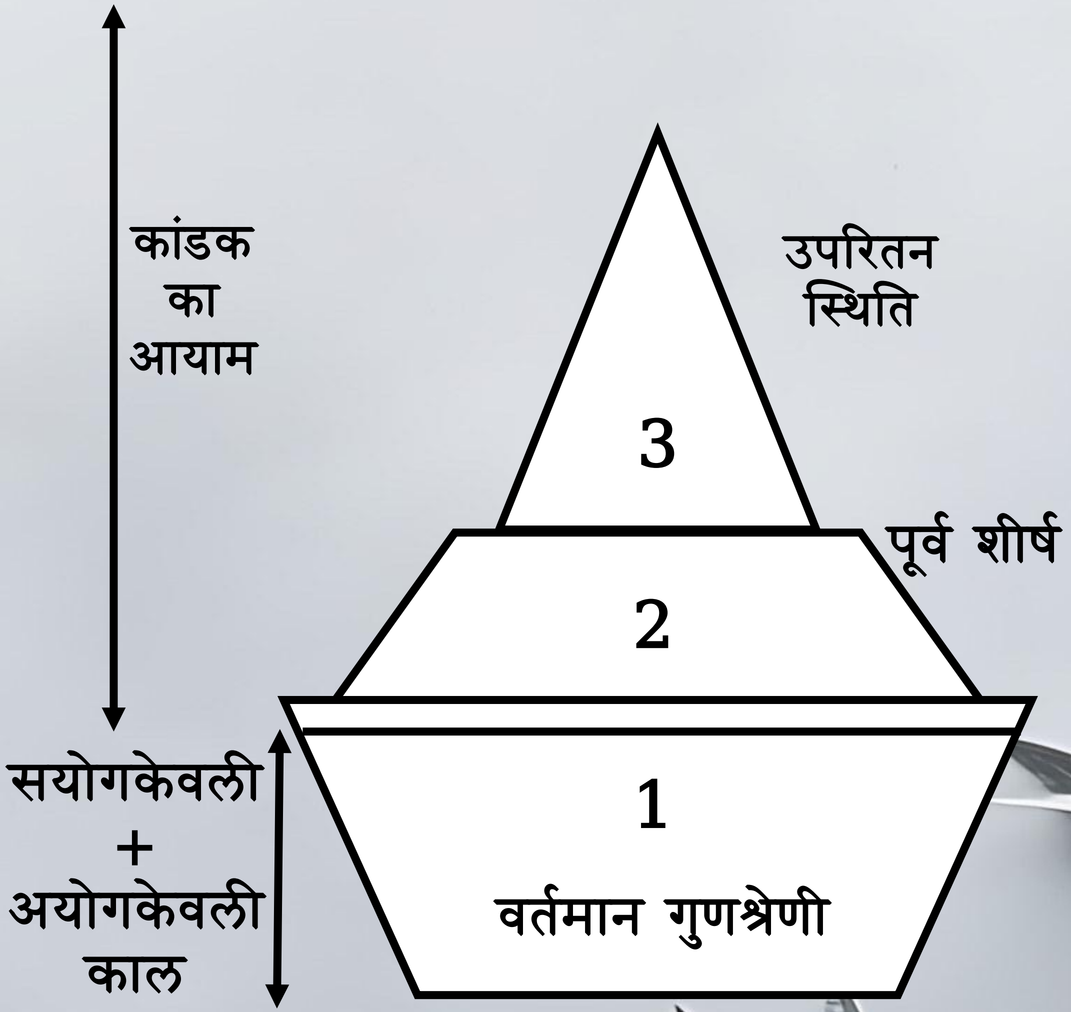

www.JainKosh.org

अंतिम फाली

अंतिम फाली में कांडक के समस्त द्रव्य को शेष नीचे रखी स्थिति में गुणश्रेणि रूप से दिया जाता है ।

कांडक द्रव्य का एक असंख्यातवां भाग गुणश्रेणि के प्रथम से द्विचरम निषेक में देता है ।

उदय निषेक से शीर्ष के पूर्व निषेक तक असंख्यात गुणित क्रम से द्रव्य देता है ।

शीर्ष में कुल कांडक द्रव्य का असंख्यात बहुभाग द्रव्य देता है ।

जैसे पूर्व में सम्यक्त्व प्रकृति के क्षपणा विधान में अंतिम कांडक के पतन का कथन किया है, उसी प्रकार यहाँ 3 अघाति कर्मों का जानना ।

www.jainkosh.org

अंतिम कांडक का पतन

अंतिम फाली के पतन के साथ ही सयोगकेवली का काल समाप्त होता है ।

इसी समय योग-निरोध क्रिया संपन्न होकर अनंतर समय में अयोगकेवली गुणस्थान को प्राप्त होता है ।

यहाँ अंतिम समय में 30 कर्मों की उदय-व्युच्छित्ति तथा साता वेदनीय कर्म की बंध-व्युच्छित्ति होती है ।

से काले जोगिजिणो, ताहे आउगसमा हि कम्माणि ।
तुरियं तु समुच्छिण्णं, किरियं झायदि अजोगिजिणो ॥647॥

- अन्वयार्थ: (से काले) उसके अनन्तरकाल में (जोणिजिणो) अयोगिजिन होते हैं।
- (ताहे) उस समय (आउगसमा हि कम्माणि) आयुसमान तीन अघाति कर्मों की स्थिति होती है।
- (अयोगिजिणो) अयोगिजिन (तुरियं तु) चौथे (समुच्छिण्णं किरियं) समुच्छिन्न क्रियानिवृत्ति नाम का शुक्लध्यान (झायदि) ध्याते हैं ॥647॥

यहाँ कांडक के पतन पश्चात् 4 अघाति कर्मों की स्थिति इस प्रकार रहती है

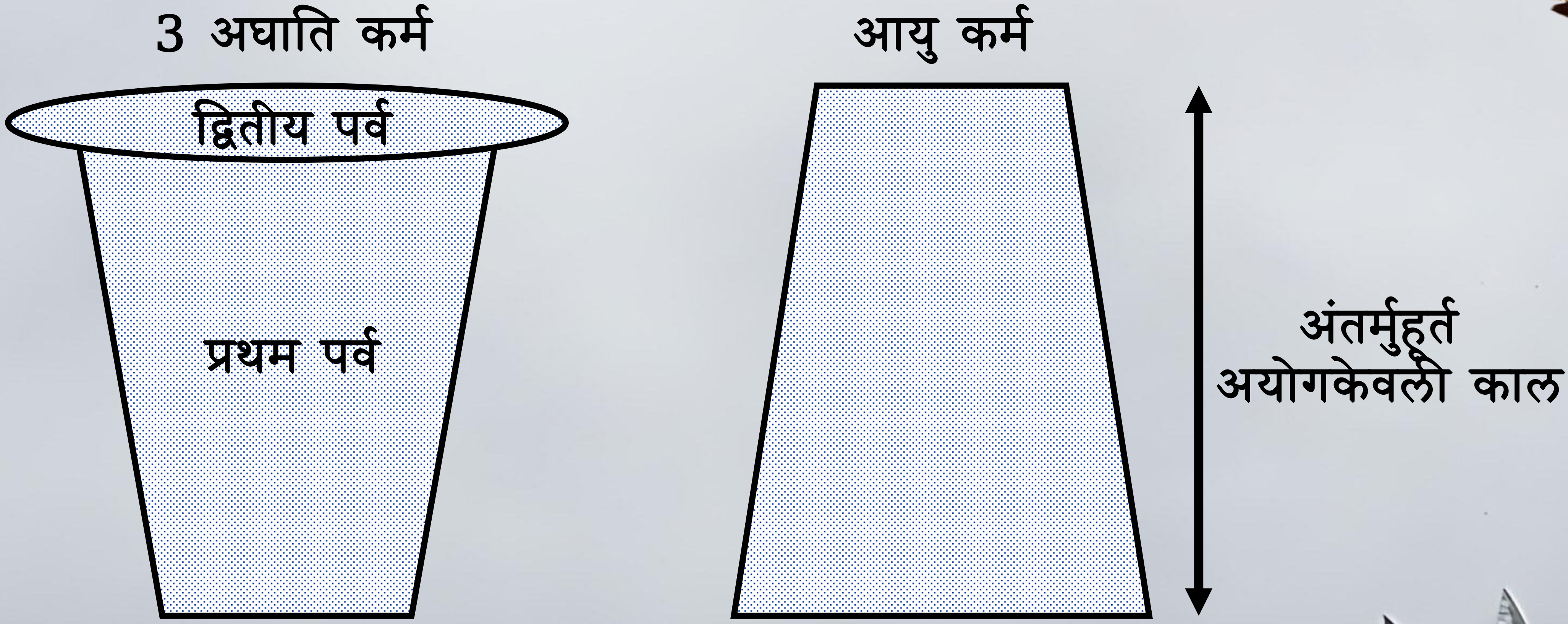

www.JainKosh.org

अयोग केवली गुणस्थान

अयोगकेवली गुणस्थान में स्थितिकांडक, अनुभागकांडक और गुणश्रेणि निर्जरा नहीं होती ।

यहाँ मात्र अध:स्थितिगलन से एक-एक समय में एक-एक निषेक का उदय आकर निर्जरा होती है ।

यहाँ उदीरणा भी नहीं होती क्योंकि उदीरणा की व्युच्छित्ति सयोगकेवली के अंतिम समय में हो जाती है ।

प्रत्येक समय में असंख्यातगुणी कर्म की निर्जरा होती है ।

कर्म के दशकरणों में यहाँ सत्त्व और उदयमात्र शेष रहते हैं।

www.Jainkosh.org

समुच्छिन्न क्रियानिवृत्ति शुक्लध्यान

अयोगकेवली गुणस्थान में चौथा समुच्छिन्न क्रियानिवृत्ति शुक्लध्यान होता है ।

समुच्छिन्न क्रिया = संपूर्णरूप से उच्छेद हुई है मन, वचन, काय की क्रिया जहाँ;

अनिवृत्ति = प्रतिपात से रहित; ऐसा यह ध्यान सार्थक नाम वाला है ।

आस्रवरहित केवली में शेष कर्मनिर्जरा में कारणभूत स्वात्मा में प्रवृत्ति ही यहाँ ध्यान है ।

www.Jainkosh.org

सीलेसिं संपत्तो, णिरुद्धणिस्सेसआसओ जीवो ।
बंधरयविप्पमुक्को, गयजोगो केवली होइ ॥648॥

- अन्वयार्थ: (गयजोगो केवली जीवो) अयोगकेवली जीव (सीलेसिं संपत्तो) शैलेश्यभाव प्राप्त करके (णिरुद्धणिस्सेसआसओ) संपूर्ण आस्रव का निरोध करके (बंधरयविप्पमुक्को) बंधरूपी धूलि से मुक्त होते हैं ॥648॥

अयोग केवलीजिन

अठारह हजार शील के भेदों के स्वामी

सर्व आस्रव निरोधक

सत्त्व और उदय प्राप्त कर्मरज से मुक्त होने के सम्मुख

योगरहित

केवली

शंका- सयोगकेवली भी शीलगुणों के स्वामी हैं । फिर अयोग केवली को ही शील का स्वामी क्यों कहा है ?

समाधान- यद्यपि सयोगकेवली को समस्त शीलगुण प्रकट हैं, तदपि उनको योग के निमित्त से आस्रव होता है । इसलिए संपूर्ण संवर नहीं होने के कारण उन्हें शैलेश्य भाव नहीं कहा जाता ।

अयोगकेवली को संपूर्ण संवर प्रकट हो चुका है । इसलिए उन्हें शील का स्वामी कहते हैं ।

बाहत्तरिपयडीओ, दुचरिमगे तेरसं च चरिमम्हि ।
झाणजलणेण कवलिय, सिद्धो सो होदि से काले॥649॥

- अन्वयार्थ: (दुचरिमगे) अयोगकेवली गुणस्थान के द्विचरम समय में (बाहत्तरिपयडीओ) बहत्तर प्रकृतियों को (च) और (चरिमम्हि) चरम समय में (तेरसं) तेरह प्रकृतियों को (झाणजलणेण) शुक्लध्यानरूपी अग्नि के द्वारा (कवलिय) कवलित करके (से काले) अनन्तर समय में (सो) वह जीव (सिद्धो) सिद्ध (होदि) होता है ॥649॥

www.JainKosh.org

सर्व कर्म का नाश

शुक्लध्यानरूपी अग्नि के द्वारा अयोगकेवली के द्विचरम समय में सत्ता में शेष रही 85 प्रकृतियों में से अनुदय वाली 72 प्रकृतियों का परमुख से नाश होता है ।

शेष उदयवान 12 प्रकृति एवं मनुष्य गत्यानुपूर्वी का अंतिम समय में उदयपूर्वक नाश होता है ।

अयोगकेवली का काल पाँच ह्रस्व अक्षर (अ,इ,उ,ऋ,ऌ) के उच्चारण में जितना काल लगता है, उतना अंतर्मुहूर्त प्रमाण काल है ।

ऐसी 85 प्रकृतियों का नाश करके ध्रुव, अचल, अनुपम सिद्ध गति को प्राप्त करते हैं । ऊर्ध्वगमन स्वभाव होने से लोक के अग्रभाग पर एक समय में जाकर विराजमान होते हैं ।

जिस प्रकार किट्ट-कालिमा रहित स्वर्ण शुद्ध होता है, वैसे सर्व भाव-द्रव्य-नोकर्म रहित कृतकृत्य आत्मा सिद्ध होती है ।

तिहुवणसिहरेण मही, वित्थारे अट्ठजोयणुदयथिरे ।
धवलच्छत्तायारे, मणोहरे ईसिपब्भारे ॥650॥

- अन्वयार्थ: (तिहुवणसिहरेण) तीन लोक के शिखर में (वित्थारे) विस्तार (अट्ठजोयणुदयथिरे) आठ योजन ऊँची, स्थिर (धवलच्छत्तायारे) श्वेतवर्णवाली, छत्राकार (ईसिपब्भारे) ईषत्प्राग्भार नाम की (मणोहरे मही) मनोहर पृथ्वी है ॥650॥

ईषत् प्राग्भार पृथिवी

सिद्ध भगवान ऊर्ध्वलोक में आठवीं ईषतप्राग्भार नामक पृथिवी पर एक समय में पहुंचकर उसके भी ऊपर तनुवातवलय के अंत में विराजमान होते हैं ।

इसके ऊपर धर्मास्तिकाय का अभाव होने से लोक के ऊपर गमन नहीं होता है ।

वहीं सिद्ध भगवान चरम शरीर से किंचित् न्यून; अनंत ज्ञान-आनंदमय सादि-अनंत काल तक विराजमान रहते हैं ।

www.JainKosh.org

ईषत् प्राग्भार पृथिवी

आठवी पृथ्वी का विस्तार पूर्व-पश्चिम 1 राजू और उत्तर-दक्षिण 7 राजू है। इसकी ऊँचाई 8 योजन है। इस पृथ्वी के मध्य में ईषत् प्राग्भार क्षेत्र है।

इस क्षेत्र के कारण पृथ्वी का नाम भी ईषत् प्राग्भार है। इस क्षेत्र की विशेषताएँ इस प्रकार हैं:

क्या	विशेषता
विस्तार	मनुष्यलोकवत् 45 लाख योजन विस्तार वाली
ऊँचाई	8 योजन
रंग	श्वेत
विशेषता	स्थिर, मनोहर
आकार	छत्राकार (बीच में मोटी, अंत में पतली), गोल

पुव्वण्हस्स तिजोगी, संतो खीणो य पढमसुक्कं तु ।
विदियं सुक्कं खीणो, इगिजोगो झायदे झाणी ॥651॥

- अन्वयार्थ: (पुव्वण्हस्स) पूर्व का ज्ञाता (तिजोगो) तीन योगयुक्त (संतो) उपशांतमोह (य) और (खीणो) क्षीणमोह जीव (पढमसुक्कं) प्रथम शुक्लध्यान (झायदे) ध्याते हैं।
- (तु) और (इगिजोगो) एक योगयुक्त (खीणो झाणी) क्षीणमोह ध्यानी जीव (विदियं क्कं) द्वितीय शुक्लध्यान करते हैं ॥651॥

शुक्लध्यान

कषायरहित जीवों को शुक्लध्यान होता है ।

शुक्लध्यान के चार प्रकार हैं ।

अंतिम दो ध्यान पूर्व में कह दिये हैं ।

आदि के दो ध्यान इस प्रकार हैं–

क्या ?	प्रथम शुक्लध्यान	द्वितीय शुक्लध्यान
नाम	पृथक्त्व वितर्क वीचार	एकत्व वितर्क अवीचार
विशेषता	पूर्व का ज्ञाता	
योग	तीनों योग	तीन में से कोई एक योग
स्वामी	उपशांत मोह, क्षीणमोह	क्षीणमोह

www.JainKosh.org

सो मे तिहुवणमहिदो, सिद्धो बुद्धो णिरंजणो णिच्चो । दिसदु वरणाणदंसण-चरित्तसुद्धिं समाहिं च ॥652॥

- अन्वयार्थ: (तिहुवणमहिदो) तीन लोकों में पूजित (बुद्धो) ज्ञानी (णिरंजणो) निरंजन (णिच्चो) नित्य (सो) ऐसे वे (सिद्धो) सिद्ध भगवान
- (मे) मुझे (वरणाणदंसणचरित्तसुद्धिं) उत्कृष्ट ज्ञान, दर्शन, चारित्र की शुद्धि (च) और (समाहिं) समाधि (दिसदु) देवें ॥652॥

कैसे हैं सिद्ध भगवान?

निरंजन	संपूर्ण कर्मों का क्षय होने से सर्व दोष रहित
बुद्ध	ज्ञान-दर्शन की उत्कृष्टता को प्राप्त होने से
नित्य	अविकल आत्म-स्वरूप की उपलब्धि होने से
सिद्ध	समस्त पुरुषार्थ सिद्ध हो जाने से
त्रिभुवनपूजित	क्योंकि उनका ध्यान करने से भव्य जीवों को मोक्ष की सिद्धि होती है।

ऐसे वे सिद्ध भगवान

मुझे

ज्ञान, दर्शन, चारित्र की शुद्धता,

समाधि और

संन्यास-मरण प्रदान करें ।

वीरिंदणंदिवच्छेणप्पसुदेणभयणंदिसिस्सेण ।
दंसणचरित्तलद्धी, सुसूयियिया णेमिचंदेण ॥653॥

- अन्वयार्थ: (वीरिंदणंदिवच्छेण) वीरनंदि और इंद्रनंदि आचार्यों का वत्स और
- (अभयणंदिसिस्सेण) अभयनंदि आचार्य का शिष्य
- (मुझ) (अप्पसुदेण) अल्प श्रुतज्ञानी (णेमिचंदेण) नेमिचंद्र ने
- (दंसणचरित्तलद्धी) दर्शन और चारित्रलब्धि (सुसूयियिया) समीचीन प्रकार से कही है ॥653॥

www.JainKosh.org

अंतिम कथन

वीरनंदी और इंद्रनंदी आचार्यों के वत्स

अभयनंदी आचार्य के शिष्य

अल्प-श्रुतज्ञानी

मुझ नेमिचंद्र ने

दर्शन, चारित्र लब्धि

समीचीन प्रकार से कही है ।

जस्स य पायपसाएणणंतसंसारजलहिमुत्तिण्णो ।
वीरिंदणंदिवच्छो, णमामि तं अभयणंदि गुरुं ॥654॥

- अन्वयार्थ: (वीरिंदणंदिवच्छो) वीरनंदि और इंद्रनंदि आचार्यों का वत्स (मैं नेमिचंद्र आचार्य) (जस्स य पायपसाएण) जिनकी चरणकृपा से (णंतसंसारजलहिमुत्तिण्णो) अनन्त संसार समुद्र से पार हुआ (तं अभयणंदि गुरुं) उन अभयनंदि गुरु को (णमामि) नमस्कार करता हूँ ॥654॥

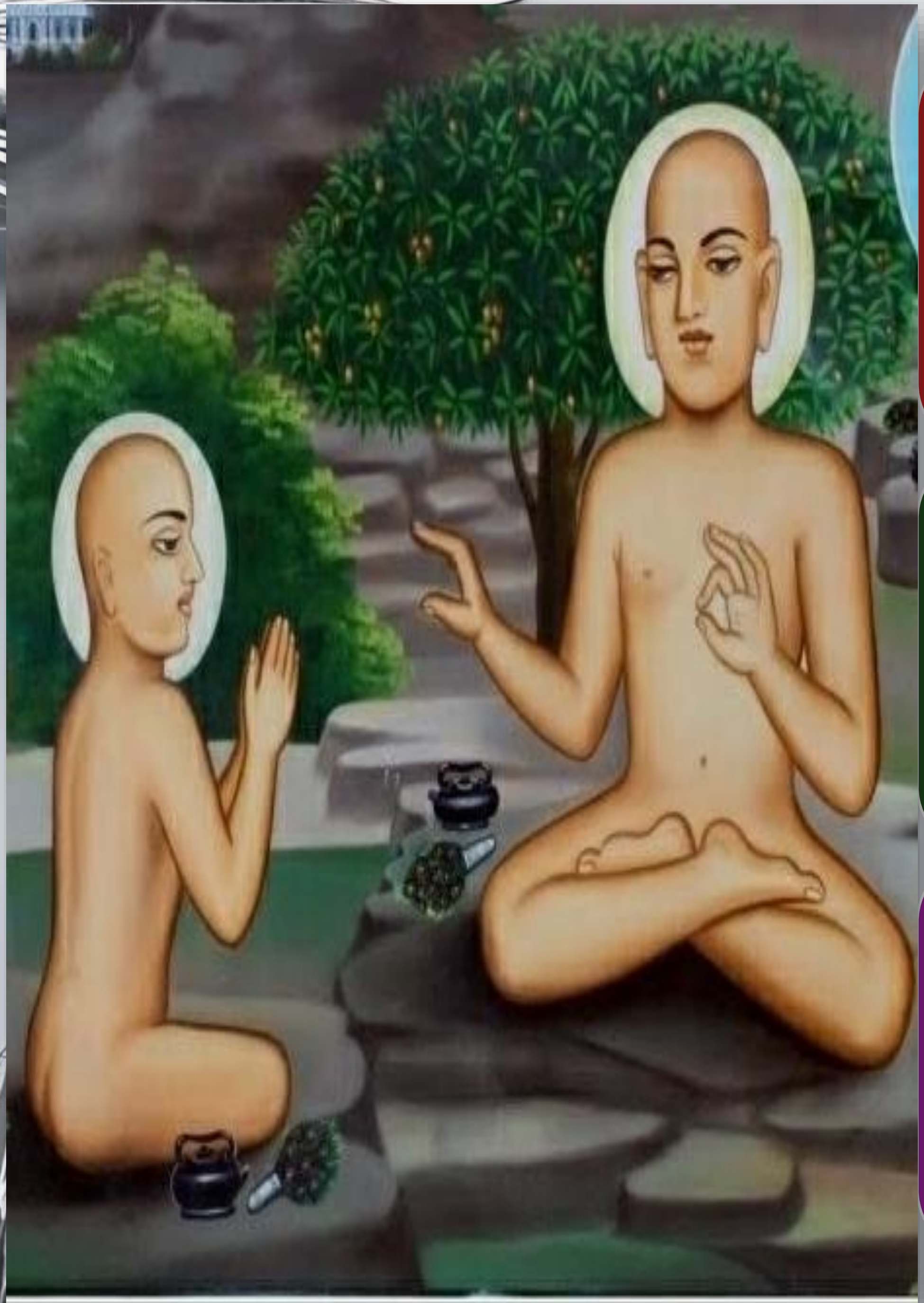

जिस शास्त्रगुरु के चरणों के प्रसाद से वीरनंदि और इंद्रनंदि का शिष्य मैं नेमिचंद्राचार्य

अनंत संसार समुद्र के पार हो गया,

उस अभयनंदि गुरु को नमस्कार करता हूँ ।

www.JainKosh.org

- Reference : श्री लब्धिसार टीकासहित अनुवाद – ब्र. सुजाता रोटे, बाहुबली (वर्तमान में आर्यिका श्री शुद्धोहंश्री माताजी)
- For updates / feedback / suggestions, please contact
  - Sarika Jain, sarikam.j@gmail.com
  - www.jainkosh.org
  - ☎: 94066-82889
- इसी विषय के विडियो लेक्चर हमारे चैनल पर उपलब्ध हैं । आप अवश्य लाभ लें । www.Jainkosh.org/wiki/Videos पेज पर जाएँ एवं लब्धिसार की प्लेलिस्ट चुनें ।